१ कविश्री माला

* उड़िया *

कवि

गंगाधर मेहेर

सम्पादक

प्रह्लाद प्रधान


राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिन्दीनगर, वर्धा
● ● ●

प्रथम संस्करण—१००
मई, १९६७
मूल्य—रु. २/-
● ● ●

मुद्रक :
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस
हिन्दीनगर, वर्धा
● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है उनका चुनाव करते समय सन् १९२ से पूर्वका साहित्य और १९२ से बादका साहित्य—इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२ के पूर्वके तथा १९२ के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री प्रह्लाद प्रधानजीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, सम्पादित करने और काव्यांशको कुमारी रेणुबाला मिश्रा तथा कुमारी चिन्मयी पटनायक अनूदित कर इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र का ब्लॉक मैनेजर 'राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस' नागपुरके सत्प्रयत्नोंसे उपलब्ध हुआ है। संस्थाकी आवरण चित्रणको बनवा देनेमें श्री वी एन आडारकरजी (डीन, सर जे जे इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका



गंगाधर मेहेर

अनुक्रमणिका

कवि-श्री माला

उड़िया



गंगाधर मेहेर

अनुक्रमणिका

उड़िया साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

उड़िया साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

उड़िया भाषा और उसका साहित्य

• • •

उड़ीसाकी भाषाका नाम उड़िया है। किन्तु उड़ीसामें इस भाषाका उच्चारण ओड़िया है और देशका नाम ओड़िशा। ओड़िशाको ओड्र विषयसे व्युत्पन्न माना जाता है। इसकी उत्पत्ति क्रम इस प्रकार है —ओड्रविषय>ओडविष>ओडिष>ओडिशा या ओड़िशा। शाकल्य मागधीका स्थान है और उड़िया भाषामें मागधी प्राकृतके बहुतसे लक्षण पाये जाते हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें ओड्रका दूसरा रूप उड्र भी पाया जाता है और भरत-नाट्य-शास्त्रमें उड्रविभाषा या बोलीका उल्लेख पाया जाता है।

> शबराभीर चाण्डाल सचल द्राविडोड्रजा
> हीना वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृता ॥१०।५०

इससे पता चलता है कि ईसवी सन्‌की प्रथम शताब्दीमें उड़िया भाषा विभाषा या बोलीके रूपमें लोगोंकी दृष्टिमें आने लगी थी और भी जिसने प्राकृत वैयाकरणोंके मतानुसार इसका आधार द्राविड़ वर्णकी भाषा थी। इसलिए प्राकृत सर्वस्वकार मार्कण्डेयने कहा है —

> शाबर्यामेवौड्री ओगातहेदय धीरसेन्या हे

अर्थात् मागधीमें सहेश्य या उत्कलेश्य और शौरसेनी आदिके योगसे ओड्री या उड़िया भाषा बनी।

हो सकता है कि प्रारम्भमें उड़िया भाषाका आधार शाबरी या कोई द्राविड़ी भाषा रहे। लेकिन आजकी उड़िया भाषाके अध्ययनसे पता चलता है कि यह आर्य वर्गकी भाषाओंमें अन्तर्भुक्त है और इसका सम्बन्ध मागधी अथवा अर्धमागधीसे है। प्राकृत कल्पतरुकार राम शर्माने शबरी ओड्री आदि भाषाओंको मागधी कहा है।

उड़ियाका मागधी व अर्धमागधीसे सम्बन्ध दिखानेका तात्पर्य है कि उड़िया-साहित्यका सम्बन्ध अन्यान्य प्रान्तीय साहित्यके समान भारतीय आर्य भाषा साहित्यसे है। भारतीय आर्यभाषाओंके विकास-क्रममें आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओंके पूर्व रूपमें विभिन्न प्राकृतोंकी अपभ्रंश भाषाएँ हैं। उड़िया भाषा भी प्राच्य प्राकृत अर्थात् मागधी अथवा अर्धमागधीसे उत्पन्न होनेके कारण पूर्वी अपभ्रंशसे सम्बद्ध है। बौद्ध गान ओ दोहा के गानोंकी भाषा पूर्वी अपभ्रंश मानी जाती है। इसलिए बौद्ध गान ओ दोहा को उड़िया साहित्यके भी प्रारम्भिक कालका ग्रन्थ माना जाता है। कान्हुपा लुइपा शबरपा आदि कई सिद्धाचार्य उड़ीसाके थे।

इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य या सिद्ध साहित्यको उड़िया-साहित्यका आदि काल माना जाए तो उड़िया-साहित्यका निम्नलिखित प्रकारसे काल-विभाजन किया जा सकता है —

काल-विभाजन

(१) आदि युग—बौद्धयुग या सारलादास युग ११ वीं शताब्दीसे १५ वीं शताब्दी पर्यन्त।

(२) मध्य युग—१६ वीं शताब्दीसे १९ वीं शताब्दीके प्रथम भाग पर्यन्त।

(क) पूर्व मध्य युग—भक्ति युग या धार्मिक युग या पञ्चसखा युग १६ वीं सदीसे १७ वीं सदी पर्यन्त।

(ख) उत्तर मध्य युग—रीतियुग या उपेन्द्र भञ्ज युग १८ वीं सदीसे १९ वीं सदीके प्रथम भाग तक।

(३) आधुनिक युग या राधानाथ काल—१९ वीं सदीके प्रथम भागके बाद।

यहाँ हम इतना उल्लेख कर देना अच्छा होगा कि किसी भी भाषाके साहित्यका काल-विभाजन करना इतना सरल नहीं है। साहित्यकी प्रवृत्ति या काल किसी एक दिनमें हठात् शुरू या समाप्त नहीं हो जाता। साहित्यकी प्रवृत्ति काफी पहलेसे शुरू हो जाती है और उस युगके बाद भी कुछ दिनों तक चलती रहती है।

आदि युग

उड़िया साहित्यके आदि युगको सारला-युग भी कहा जाता है। क्योंकि इस युगके मुख्य कवि थे सारलादास। किन्तु इनके पहलेका साहित्य भी इस युगके अन्तर्गत है। पहले कहा गया है कि 'बौद्ध गान ओ दोहा' को उड़िया साहित्यके प्रारम्भिक कालका ग्रन्थ माना जाता है। अतएव यह भी आदि युगमें अन्तर्भुक्त है। भाषाकी दृष्टिसे ग्राम्य तो है ही। कान्हुपा शबरीपा लोहिपा आदि उड़िया थे ही। इनके अतिरिक्त गोरख मीननाथ जालिपा हाड़िपा आदि सिद्धोंका उड़िया-साहित्यमें बार-बार उल्लेख पाया जाता है। साहित्यिक भावकी दृष्टिसे भी 'बौद्ध गान ओ दोहा' में प्रतिफलित विचारधारा आदि कालीन और पूर्व मध्य कालीन उड़िया साहित्यमें मिलती है। यह परम्परा मध्य युग तक चलती आई। सारलादासके 'पुराणों' नारायणानन्द अवधूत स्वामीके 'रुद्र सुधानिधि' और 'पञ्च सखा' साहित्यमें शून्य सहज समाधि गौपारम्य निरञ्जन, नाद साधना योगतत्त्व आदिकी चर्चा बार-बार देखनेमें आती है, जो 'बौद्ध गान ओ दोहा' में भी पाई जाती है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' के 'ओड़ियान' का भी 'ओड़ियान' से सम्बन्ध है जो तान्त्रिक तन्त्रके चार पीठोंमेंसे एक है। बाकी तीन पूर्णगिरि कामाख्या और श्रीहट्ट हैं। एक 'ओड़ियान' स्थान बन्नमालके ढलानसे भ्रम हो सकता है। किन्तु चार पीठोंमेंसे एक 'ओड़ियान' उड्रपीठ या उड़ीसा ही है। केवल रूप धारा की ही नहीं रूप या छन्दोंकी भी परम्परा चली आ रही है। उन गानोंके राग 'पटमञ्जरी' (पटहमञ्जरी) 'गुर्जरी' (गुज्जरी) 'देशाख' (देशाख) भैरवी' 'कामोद' 'धनश्री' (धनाश्री) रामकी' (रामकेरी) वराड़ी' मालश्री' (मालश्री) आदि आज भी उड़िया काव्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। दोहे भी लिखे जाते थे। चित्र काव्य बन्धोदयमें यशोवन्तने अपनी दोहोंके लिखनेका उल्लेख किया है। दोहको 'दुहा' व 'दुहा' भी कहा जाता था। परवर्ती कालमें अवश्य यह धारा क्षीण हो गई। उड़िया-साहित्यमें सन्ध्याभाषाका भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' में टेण्टण पादका सन्ध्याभाषामें एक गान मिलता है —

टालत मोर घर नाहि पड़वेषी
हाड़ित भात नाहि नित आवेषी।
बेङ्गस संसार बड़हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि बेण्टे षामाय॥
बलद बिआएल गविआ बाँझे।
पिटा दुहिए ए तिना साँझे॥
जो सो बुधी सोइ निबुधी।
जो सो चोर सोइ साधी॥

मिते मिते बिमाता बिहे बम कुसम।
टेमान पातुए मीत बिचारिले कुसम॥

ठीक इसी प्रकारका सप्तांगभाषामें गोरखका एक भजन उड़ियामें मिलता है — यथा —

कहिले कि मते आइ रे मनुआ।
समस्तरे पाम दासा हुरार्ड बापुकी आमे अइाइ॥
ढिढिफकि कलानि आम्बालुका साकुा बालनी कि कसा स्वर।
टोकाइ कुम्भाइ आपमरे गले छाम्पुनि बमिढि घर॥
कुम्भीर कु कसा बात कछ स्वर बेगा गला बैल पमे।
बरिआ बिसरे बिढि न पाइला बाइला मरिच पमे॥
बेढम बाड़िमयि मुमुकि कुआइ मेढम बाकरे गुमा।
मुमा सोइमढि रस बस्कुकरे मम्माटि बिम्बे बिम्बमा॥
पिम्पुडि बापुडा बिमा होइमला बनामे उड़िला धूलि।
बिसर मकडशा माइल छडके बेढम देले कुमहुलि॥

× × ×

कहेढ बापुडा बड़ कुचिमालि बालुमिरे मुहे दहि।
ए देहि आइव मोरेक दास मे बसि बहुलाभी होइ॥

गोरखनाथके नामसे इस प्रकारके कितने भजन उड़ीसाके गाँवोंमें प्रचलित हैं। उनके नामसे 'सप्तांग योगधारणा' नामक एक पुस्तक भी पाई जाती है। सामयारोंकी स्वर साधना इसका प्रतिपाद्य विषय है और यह एकमात्र गद्यकी पुस्तक-सी प्रतीत होती है। इसकी भाषा उड़िया है और इसको भी उड़िया साहित्यके आदि कालमें रखा जाता है। किन्तु वस्तुतः यह गोरखनाथकी लिखी है या नहीं इसमें सन्देह होता है जैसे कि 'गोरखबानी' आदिके बारेमें। गोरखनाथकी भाषा तो उड़िया नहीं थी। हो सकता है दूसरे किसीने लिखकर गोरखनाथके नामसे चला दिया हो। या यह भी हो सकता है कि गोरखनाथकी लिखी हुई यह पुस्तक बादमें उत्कलीय होनेसे भिन्न परिवर्तित हो गई हो। विषय वस्तु और भाषा भी। किन्तु इतना तो सत्य है कि उड़िया-साहित्यके आदि काव्य नाथ सम्प्रदायका प्रभाव स्पष्ट है। इस कालमें 'शिशुवेद' का भी रखा जा सकता है और यह भी एक नाथ सम्प्रदायका ग्रन्थ है। सारलादासके 'महाभारत' में भी 'शिशुवेद' का उल्लेख आता है और इससे सारलापूर्व साहित्य मान सकते हैं। किन्तु इसका काल निश्चित नहीं है। अभी तक यह पुस्तक छपी भी नहीं है। इसकी दो पोथियाँ मिली हैं। दोनोंमें विषयवस्तु प्रायः समान है किन्तु इसकी भाषा अपेक्षाकृत प्राचीन मालूम पड़ती है। जैसे —

येक मुहँ दुइ जलम विजम
(घु) निरहुँ निरमारे सेहु अलम।
सीखुमना मध्ये घु योति प्रकास
बदन्ति नाथ-भेदी सिम्पाक विकास॥

इसकी तुलना दोहाकोष के दोहेसे की जा सकती है। इसमें धिनुवेद का इस प्रकार अर्थ दिया गया है —"दुइ कर्णरे तुळा देइ भल करि मुदीब। राम पाहान्ति उठी लय करिब। ये लय पुनि सुमइ आकाशर मध्ये। येहाकु धिनुवेद बोलि।" [दोनों कानोंमें अँगुली देकर अच्छी तरह बन्द करना। राम और उच्चार लय (ध्यान) करना। आकाशमें जो ध्वनि सुननेमें आती है उसको 'धिनुवेद' कहा जाता है।] 'धिनुवेद' भावोंका खास भेद तो नहीं है, इसमें भी संध्याभाषाका प्रयोग किया गया है यथा —

तपत तमुरे पिवा न जाइबा निर
भातार मर्ने पाइ न जाइबा नीर।
येडे पड़ आइबा तेड़े पड़ कडि
तासकनो परते हुम गुरुमुखे पुडि॥

इन दोहोंको पोथीमें श्लोक कहा गया है और गद्यमें इनकी टीका भी गई है।

उड़ीसाके संस्कृत नाटकोंमें एक विचित्र परम्परा पाई जाती है। परम्पराके अनुसार संस्कृत नाटकोंमें संस्कृत और विभिन्न प्रकारके प्राकृत प्रयोग किए जाते हैं। किन्तु उड़िया-साहित्यके आदि कालीन संस्कृत नाटकोंमें प्राकृतके बदले स्थानमें उड़िया भाषाका प्रयोग किया गया है। कपिलेन्द्र देवके परशुराम विजय नामक संस्कृत व्यायोगमें एक उड़िया गान पाया जाता है जैसे —

श्रम रामेण गीयते
केवल मुनि कुमर परशु धरिण कर
वामेण शोहे धनु शरला
कोपेण बोलइ बीर त तु से वधिलु मो तात
आज तोर छाड़िबइ प्राण ना।
नृप रावन हो लिए तोर राज्ये बड़ा बलेवा। इत्यादि।

कपिलेन्द्र देव (ई० सन् १४३५ से १४६७) मादलापाञ्जीको साहित्य माना जाए तो यह भी आदि कालके अन्तर्गत है। यह जगन्नाथ मन्दिरमें सुरक्षित है और आसाम बुरञ्जीके समान इसमें उड़ीसाके राजवंशोंका और जगन्नाथ मन्दिरके नियमोंका इतिहास लिपिबद्ध है।

किंवदन्तीके अनुसार गंग वंशके प्रथम राजा चोडगंगदेवने ई० सन् १०४७ (कन्या २४ दिन शुक्ल दशमी दशहराके दिन) इस पञ्जिकाको लिखना शुरू किया था। लेकिन भाषाकी दृष्टिसे विचार करनेपर यह इतना प्राचीन नहीं मालूम होता। हो सकता

है कि इसकी भाषा परवर्ती पण्डी लेखकोंने सुबोध करनेके लिए भाषाको बदल दिया हो। दूसरोंका मत है कि यह मराठाकालमें १६ वीं शताब्दीमें रामचन्द्र देवके राजत्व कालमें लिखवाई गई थी। मादलापाञ्जीके अतिरिक्त उड़िया गद्यमें कुछ व्रत कथाका साहित्य भी मिलता है। उसमें सोमनाथ व्रत कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका काल तो निश्चित नहीं है पर भाषासे यह भी प्राचीन-सी प्रतीत होती है। इसमें सोमनाथजी की पूजाका विधान है। इसके लेखकका नाम अज्ञात है। केवल इसके वक्ता परमेश्वर शिव और श्रोता देवी पार्वती हैं। इस कथामें और [illegible] आते हैं। इसकी भाषा परिमार्जित और शैली प्रवाहशील है।

इस कालका और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है रुद्र सुधानिधि। इसको भी सारला-पूर्व काल (१३ वीं या १४ वीं सदी) का कहा जाता है। यह पुस्तक सम्पूर्ण प्राप्त नहीं है। प्राप्त अंश सम्पूर्ण छपा भी नहीं है। इसके लेखक एकाम्रकानन निवासी नारायणानन्द अवधूत स्वामी हैं। इसमें एक मार्गभ्रष्ट योगीका वृत्तान्त वर्णित है और यह एक शैव सम्प्रदायका ग्रन्थ-सा मालूम पड़ता है। इसकी भाषा बन्ध दृढ़ और अत्यन्त प्रवाहशील तथा शैली परिष्कृत है। पढ़नेसे मालूम होता है कि यह कुछ ललित गद्यमें या छान्दिक वृत्तमें लिखा गया है। इसकी रचनामें अनुप्रास और यमक आदि पूर्ण मात्रामें मिलते हैं। कहीं-कहीं अक्षरावट के नियमका पालन किया गया है। अभिनव वामन नामके प्रकरणोंमें उनके आदिमें 'अ' से 'क्ष' तक वर्ण क्रम रखकर इसकी सृष्टि की है। सचमुच यह एक अपूर्व ग्रन्थ है।

कलसा चउतिशा भी सारला-पूर्व काल का आदि काव्य कहा जाता है। इसके लेखक बच्छादास हैं। लेकिन उनका काल निश्चित नहीं है। यह एक हास्य रस प्रधान काव्य है और इसमें शिवजीकी बर यात्रा और पार्वतीके साथ विवाहका वर्णन है। इसमें शिवजीको अत्यन्त बूढ़े रूपमें चित्रित कर हास्य रसकी अवतारणा की गई है।

सारलादास सच कहा जाए तो सारलादास ही उड़ीसाके प्रथम जातीय महाकवि हैं और उड़िया-महाभारत आदि उनकी प्रतिनिधिक रचना है। उन्होंने अपनेको शूद्र मुनि और अपनेमें अज्ञानी मूर्ख मतिहीन आदि कहा है।

सारलादास उड़ीसाके सूर्यवंशी प्रथम राजा कपिलेन्द्र देवके राजत्वकालमें हुए थे। उनका राज्य काल ईसवी सन् १४३५ से १४६७ तकका है। कुछ लोग उनको गंग वंशके नरसिंह देवका समकालीन मानकर उनका काल ईसवी सन् ११२८ से १२५७ तक बताते हैं। किन्तु सूर्यवंशीय कपिलेन्द्र देव ही सारलादासके समयके राजा थे यह मत अधिक जँचता है।

उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं— बिलंका रामायण 'महाभारत' और
डीपुराण'। सारलादासके अपने कथनके अनुसार बिलंका रामायण उनकी
म रचना है। इसमें देवीरूपमें सीताकी महत्ता बतलाई गई है।

यह 'बिलंका रामायण' 'अद्भुत रामायण' पर आधारित है। किन्तु 'अद्भुत
ायण' का सहस्र सिर बिलंका रामायणमें सहस्रमुख हो गया है और वहाँका
र यहाँ बिलंका हो गई। 'बिलंका रामायण' में नारी और शक्तिका प्राधान्य
ाया गया है।

सारलादासके लिखे हुए ग्रन्थोंमेंसे यह अन्तिम है। 'चण्डीपुराण' में
लादासने खुद कहा है —

प्रथमे रामायण द्वितीये महाभारत
तृतीये केवल मुं कलइ भागवत।

[मैंने प्रथम रामायणकी रचना की उसके बाद महाभारतकी और उसके बाद
वत की।]

यहाँ रामायणका अर्थ है— बिलंका रामायण और भागवतका अर्थ
ी भागवत' या चण्डीपुराण है। बिलंका रामायणमें जिस प्रकार शक्तिका माहात्म्य
ाया गया है, उसी प्रकार चण्डीपुराणमें भी। इसकी रचना मार्कण्डेय पुराण-
हिषासुर-वध उपाख्यान और देवी भागवतपर आधारित है फिर भी इसमें मौलिकता
। चण्डीपुराणमें महिषासुर, महिषसिंहके रूपमें वर्णित है। यह कपिलसिंह
ाजाका पुत्र था। उसके जन्मके बारेमें कहा गया है कि कपिलसिंहके रमणसे
त होकर उसकी पत्नी अमरिका सिंहलमें भाग गई। वहाँ महिष रूपिणी अम-
ाके साथ उसके बाद हठात्‌ महिषके बलपूर्वक रमण करनेसे महिषसिंह पैदा
ा। कपिल ऋषिसे सम्भाव पाकर कपिलसिंह सिंहक बना और उसने अपनी
नी अमरिकासे भेंट की। उससे सब सुनकर उसने महिषासुरको अपने पुत्रके
पमें ग्रहण किया। इसके आगे महिषासुरकी तपस्या शिवसे वर प्राप्ति दिग्विजय
न्दावतीके साथ विवाह शुम्भ निशुम्भका स्वर्गपर आक्रमण दुर्गाका आविर्भाव
लासगिरिमें अवस्थान चण्ड-मुण्ड शुम्भ-निशुम्भ कालिमाता रक्तबीर्य धीरधमत्का
-बिमोचन आदिका वध महिषासुरका रत्नगिरि उत्पादन शुम्भ निशुम्भका
ध और अन्तमें महिषासुरका वध वर्णित है।

इसमें युद्ध-आकृतियाँ आदिका वर्णन अत्यन्त मनोरम है। इसमें दोष
णिकी अपेक्षा शाक्त धर्मका प्राधान्य दिखाया गया है। यह वाणिक वृत्तमें लिखा
या है। अर्थात् पदोंकी अक्षर संख्याका कोई नियम नहीं है। इसमें एक पंक्तिमें तेरह
र तो दूसरीमें तेतीस हैं किन्तु अन्तमें तुक मिलती है। लेकिन बादके मुद्रणालयके
धिकारियोंने इसे बदलकर समाक्षर अर्थात् चतुर्दशाक्षरोंमें परिणत कर दिया है
ौर वही आज उपलब्ध है।

'महाभारत' संसारभरका सबसे बड़ा ग्रन्थ है और सबसे ज्यादा प्रसिद्ध भी। इसे भी चतुर्वेदाक्षरोंमें परिणत कर मुद्रित किया गया है। लेकिन उसका एक शुद्ध संस्करण भी निकालनेकी व्यवस्था हो रही है।

यह विशाल ग्रन्थ मूल संस्कृत महाभारतका अनुवाद नहीं है। वह इसका आधार तो है लेकिन इसमें बहुत व्यतिक्रम है और पर्व क्रममें भी।

मूल महाभारतके तीन पर्वोंके नाम [illegible] महाभारतमें नहीं हैं शामिल हैं—सौप्तिक, अनुशासन और महाप्रस्थान। इसके बदलेमें तीन नाम मिलते हैं— मत्स्यपर्व, कार्ईपर्व या ऐषिक अर्थात् [illegible]ने आदि पर्वको छोड़कर दो पर्व कर दिया है मत्स्य और कथा और सौप्तिक पर्वके बदले कार्ईपर्व या ऐषिक। मूल महाभारतमें कथा पर्व मत्स्य पर्वका एक उपपर्व है और ऐषिक पर्व सौप्तिक पर्वका एक उपपर्व। [illegible] उपपर्व है अनुशासन पर्वको उड़ा दिया गया है और महाप्रस्थान पर्वको स्वर्गारोहण पर्वमें जोड़ दिया गया है।

पहले कहा ही गया है कि [illegible] महाभारत मूल संस्कृत महाभारतका अनुवाद नहीं है उसपर सिर्फ आधारित है। यत्र तत्र व्यतिक्रमके अलावा पर्वोंके कथाओंके वर्णन-क्रममें भी व्यतिक्रम है। कहीं कहीं मूल कथाओंको बिल्कुल छोड़ दिया गया है। कहीं कहीं नूतन अनुपलब्ध कथावस्तुओंको सम्मिलित कर दिया गया है और कहीं-कहीं मूल कथाओंमें व्यतिक्रम किया गया है। महाभारतके [illegible] मूल महाभारतके वन पर्वमें दिया गया है किन्तु [illegible]ने महाभारतके आदि पर्वमें। इसी प्रकार उद्योग पर्वका अक्षौहिणी-आख्यान आदि पर्वमें है। वनवासके प्रथम मासमें पाण्डवोंने भीमसेन और हिडिम्ब [illegible] बध किया था। इसका उल्लेख [illegible]ने नहीं किया है। दूसरी तरफ उद्योग पर्वमें मूल महाभारतका [illegible] आख्यान [illegible] श्रीकृष्णकी [illegible] इत्यादि विषय भी [illegible]ने छोड़ दिया है। जो कथाएँ मूलमें नहीं हैं इस प्रकारकी कथाएँ भी जोड़ दी गई हैं। जैसा कि उद्योग पर्वमें [illegible] अश्वमेधका विवरण इत्यादि। [illegible] भी [illegible] दूरीतक [illegible] के लिए तैयार नहीं हुए तब [illegible] दूरीतक [illegible] है [illegible] [illegible] जैसा कि [illegible]। [illegible] था। [illegible] और [illegible] के लिए [illegible]। [illegible]। [illegible] और [illegible]। [illegible] और [illegible] भी [illegible]। [illegible]।

भूतको मोरेके चाकमें पकड़ा। भूतने साफ किए हुए एक सौ बत्ती मन जिस देना मान्य किया। यह उड़ीसाकी लोककथा है।

बकमोहे की कहानी भी इसी प्रकार की है। यह कहानी भी उड़ीसामें काफी प्रचलित है। सारलादासने अपनी महाभारतमें इसे स्थान दिया है। कृष्ण-वेणी नदीके तटपर मेकन नामका एक लकड़हारा था। काठ काटनेके सिवाय वह कुछ नहीं जानता था। एक बार जब बड़ा तूफान आया तो काठके बिना उसने एक दिनका उपवास किया। दूसरे दिन जब उसकी पत्नीने जंगलसे काठ लानेके लिए कहा तो वह कुल्हाड़ी लेकर जंगलको गया। रास्तेमें एक मन्दिरमें सो गया। जब साँझ हो गई तो वह घबराकर उठा और मन्दिरके भीतर जाकर उसने देखा कि वहाँ ब्रह्मा विष्णु और महेशकी दारु (काष्ठ विग्रह) की बनी हुई मूर्तियाँ हैं। अत उसने विष्णुकी उस प्रतिमाको जाकर उसको अच्छा सूखा काठ समझकर काटना प्रारम्भ किया। यह देखकर विष्णु घबरा गए और उसके कहनेके अनुसार तीन दिनका भोजन दिया। तीन दिनके बाद आकर वह फिर काटने लगा तो हमेशाके लिए उसकी व्यवस्था हो गई। यह देखकर बसन्ता नामके उसके पड़ोसीने भी ऐसा ही किया तो महेश्वर, रूद्र रूप धारणकर, उसको सबसे चीरने लगे। बसन्तने पूछा कि यह प्रभेद क्यों? शिवजीने कहा—मूर्ख और ज्ञानी, वेद और वानरमें अन्तर होता है। तुम ज्ञानी हो और वह मूर्ख है।

सारला-उपाख्यान भी मूल महाभारतमें नहीं है। सारला एक कुत्सित पुरुष था सहदेवके कथनानुसार उसे पकड़कर भीमने युद्ध-क्षेत्रके एक स्तम्भसे उसे बाँध दिया रातको भूत बावना भूत प्रेत पिशाच योगिनी राक्षसी पिशाचिनी आदिने आकर तथा आदमीको बँधा देखकर खुशी प्रगट की लेकिन सारलाको पहचानकर और उसे कुत्सित तथा अपवित्र जानकर वे उसे छोड़कर चले गए। अन्तमें अम्बिका सियार और जागती सियारिन आई और उन्होंने भी उसे छोड़ दिया किन्तु उन्हींके सामने अम्बिका सियारने महाभारत युद्धके १८ दिनोंमें होनेवाली सारी घटनाओंकी भविष्यवाणी की और अपनी अपवित्रताके कारण जीवित लौटकर युधिष्ठिरके सामने सब वर्णन किया। वह पूर्व जन्ममें जिस समय जयसेन गन्धर्व था और उसकी पत्नी मेनाकी कन्या मल्लिकाको इन्द्रकी आज्ञानुसार कुबेरके पास ले जा रहा था उस समय रास्तेमें उससे रमण करनेके कारण कुबेरने उसे शाप दिया था। यह कथा उड़ीसाकी ही है।

स्वर्गारोहणके समय सारलादास पाण्डवोंका उड़ीसामें बीच लाए थे। उस समय वे चित्रोत्पला पारकर धर्मनगर या याजनगर (याजपुर) पहुँचे तो उसी ग्रामवासी अमरावतीके हरिमाधुकी कन्या सुहासोम युधिष्ठिरका विवाह हुआ। सुहासिका जानती थी कि वह विवाहके दिन मर जाएगी लेकिन अर्जुनके पराक्रमके कारण यम उसे नहीं ले जा सका।

गोसम्युद्धके बाद दुर्योधन अपने लड़के लक्ष्मणकुमारकी पीठपर रख नदी सन्तरण करते हैं यह बड़ा कारुणिक वर्णन है। यह बंगलाके काशीराम महाभारतमें भी देखनेमें आता है तथा परवर्ती कवि राधानाथ रायने उसीके आधारपर एक लम्बी कविता लिखी है।

इस प्रकार हम लोग देखते हैं कि इसमें उड़ीसाकी किंवदन्तियाँ देव-देवियाँ नदी-पहाड़ तीर्थ भूमियाँ सामाजिक रीति-रिवाज धर्म-सम्प्रदाय सभी सन्निविष्ट हैं। नाम बदलकर अन्य नामोंसे उस कालका इतिहास भी इसमें लिपिबद्ध है। सब कहा जाए तो यह एक विशाल जातीय ग्रन्थ है। यह काल इतिहास और पुराणका था। इस युगकी मुख्य प्रवृत्ति ऐतिहासिक या पौराणिक थी। इसी युगमें उड़िया साहित्यका वशिष्ट उन्मेष हुआ था।

उड़िया साहित्यका यह उन्मेष सिर्फ संस्कृत साहित्य या पुराणोंके आधारपर नहीं हुआ बल्कि इस कालमें मौलिक रचनाएँ भी हुईं '[illegible] सुधानिधि' की तरह और भी मौलिक रचनाएँ हुई थीं। मार्कण्डदासकी 'केशवकोइलि' इसी प्रकारकी एक रचना है। यह भी चौंतिसाके रूपमें लिखी गई है लेकिन इसमें कोइल (कोयल) को सम्बोधन किया गया है। इसमें श्रीकृष्णके मथुरा जानेके बाद पुत्र विरहित यशोदा कोयलको सम्बोधित कर अपनी मार्मिक व्यथा व्यक्त करती है। यह वात्सल्य रसका एक अनुपम खण्डकाव्य है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल और भाव बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं।

यह उड़िया साहित्यका प्रथम कोइलि खण्डकाव्य है। इसके बाद उड़िया साहित्य कोइलि साहित्यमें अत्यन्त समृद्ध हुआ और पञ्चसखाओंमें बलराम दासने 'बारमासी कोइलि' [illegible] दासने 'ज्ञान कोइलि' नाथ दासने 'आत्मोदय कोइलि' तथा दूसरोंने मर्कटी कोइलियाँ लिखीं। पञ्चसखाओंके जगन्नाथदासने इसपर एक 'अर्थ कोइलि' लिखी जिसमें इसका शरीर तत्त्व परक अर्थ किया गया है।

इसका दूसरा ग्रन्थ महाभारत है। यह अत्यन्त अप्रकाशित है। यह एक तत्त्व परक ग्रन्थ है। इसमें शिव-पार्वती संवाद है। और भी रामचन्द्रजीके [illegible] आत्मोदय इसका संक्षिप्त विषय है।

[illegible] दास [illegible] इस युगमें राम [illegible] भी लिखे गए। इसी समय धर्मगदासने 'राम-विभा' (राम-विवाह) नामक एक काव्य लिखा था। [illegible] इसके परवर्ती थे। 'राम-विभा' में वर्णित सुग्रीव और हनुमानका [illegible] [illegible] दासके अनुसार लिए गए हैं।

यह ग्रन्थ बारह छान्दों (गीतों) में लिखा गया है और विभिन्न राग-रागिणियोंका प्रयोग किया गया है। इसमें [illegible] [illegible] [illegible] वर्णित है। इसकी भाषा प्राचीन-सी है। [illegible] उनके [illegible] और उनके पूर्ववर्ती [illegible] [illegible] है।

प्रताप राय कार्तिकराय प्रभृतिने 'राम विभा' का उल्लेख किया है। इसी युगका और एक काव्य है उषाभिलाष। इसके रचयिता शिशुशंकर दास हैं। इनका समय निश्चित रूपसे निर्धारित नहीं है किन्तु प्रतापराय कार्तिकराम धनञ्जय भञ्ज प्रभृतियोंने इनके उषाभिलाष का उल्लेख किया है। इसमें बाणासुरकी कन्या उषा और प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका विवाह वर्णित है। इसमें सारलादासके महाभारतमें वर्णित 'उषा-हरण' का प्रभाव परिलक्षित होता है। उषाका पिता बाणासुर शम्भु-भक्त था और शोणितपुरका राजा था। सारलादासके अनुसार शोणितपुर वैतरणीके तटपर था। इसमें शृंगार रस प्रधान है और कहीं-कहीं करुण और वीर रसके छींट भी दिखाई पड़ते हैं।

इस युगकी और एक विशेषता है कि इस कालमें संस्कृत काव्य ग्रन्थोंके उड़ियामें अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। कवि धरणीधरने जयदेवके गीत-गोविन्द का उड़ियामें पद्यानुवाद किया है। अनुवादकी भाषा सरल और भाव प्रकाशनमें समर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युगमें उड़िया साहित्यका विभिन्न दिशाओंमें विकास हुआ।

मध्य-युग

मध्य युगको दो भागोंमें विभाजन किया गया है—पूर्व मध्य युग और उत्तर मध्य-युग।

(क) पूर्व मध्य युग पूर्व मध्ययुगको भक्ति युग भी कहा जा सकता है लेकिन यह भक्ति रागानुरागा नहीं ज्ञान मिश्रा है प्रेम प्रधान नहीं योग प्रधान है। इसमें काय साधना और पिण्ड-ब्रह्माण्ड तत्त्व प्रधान है। इस आदि कालके प्रति-दृष्टि डालें तो उसमें प्रधानतया तीन धाराएँ नजर आएँगी—धर्म धारा पुराण धारा और काव्य धारा। धर्म धारामें बौद्ध गान औ दोहा की शून्य साधना आती है। चर्या पदमें है —

> पेरखमि यह सिहु सल्वहँ सुन
> चित्त विहुने पाप न पुण्ण
> चित्त सहजे सुण्ण सम्पुण्णा
> काअ वियोरा मा होहि विसण्णा

इससे यह भी जाहिर होता है कि शून्यसे चित्त का समरस सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया है— मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोः। इस प्रकारकी शून्य साधनाके लिए काय साधना अपेक्षित है और काय साधनाके लिए नाड़ी बोध। इसलिए श्री काल चक्र तन्त्र ने कहा है —

काया भावे न सिद्धिर्नैव परम सुखं प्राप्यते जन्मनि और तस्मात् कायार्थे देहे प्रतिदिन समये मायेन नाड़ी योगे काय सिद्धम्यसिद्धि स्यो भुवन

भीष्मगुरुके बाद दुर्योधन अपने लड़के लक्ष्मणकुमारकी पीठपर रक्त नदी सन्तरण करते हैं, यह बड़ा मार्मिक वर्णन है। यह प्रसंगके काशीनाथ महाभारतमें भी देखनेमें आता है, तथा परवर्ती कवि राधानाथ रायने इसीके आधारपर एक लम्बी कविता लिखी है।

इस प्रकार हम लोग देखते हैं कि इसमें उड़ीसाकी किंवदन्तियाँ देव-देवियाँ नदी-पहाड़ तीर्थ भूमियाँ सामाजिक रीति-रिवाज धर्म-सम्प्रदाय सभी सन्निविष्ट हैं। नाम बदलकर अन्य नामोंसे उस कालका इतिहास भी इसमें लिपिबद्ध है। सच कहा जाए तो यह एक विशाल जातीय ग्रन्थ है। यह काल इतिहास और पुराणका युग था इस युगकी मुख्य प्रवृत्ति ऐतिहासिक या पौराणिक थी। इसी युगमें उड़िया साहित्यका यथेष्ट उन्मेष हुआ था।

उड़िया साहित्यका यह उन्मेष सिर्फ संस्कृत साहित्य या पुराणोंके आधारपर नहीं हुआ बल्कि इस कालमें मौलिक रचनाएँ भी हुईं 'रुद्र सुधानिधि' की तरह और भी मौलिक रचनाएँ हुई थीं। मार्कण्डदासकी केशबकोइलि इसी प्रकारकी एक रचना है। यह भी चौंतीसाके रूपमें लिखी गई है लेकिन इसमें कोइल (कोयल) को सम्बोधन किया गया है। इसमें श्रीकृष्णके मथुरा जानेके बाद पुत्र विरहित यशोदा कोयलको सम्बोधित कर अपनी मानसिक व्यथा व्यक्त करती है। यह वात्सल्य रसका एक अनुपम खण्डकाव्य है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल और भाव बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं।

यह उड़िया साहित्यका प्रथम कोइल काव्यग्रन्थ है। इसके बाद उड़िया साहित्य कोइलि साहित्यसे अत्यन्त समृद्ध हुआ और पञ्चसखाओंमें बलराम दासने 'बारमासी कोइलि', शंकर दासने 'कान्त कोइलि' नाथ दासने 'ज्ञानोदय कोइलि' तथा दूसरोंने सैकड़ों कोइलियाँ लिखीं। पञ्चसखाओंमें जगन्नाथदासने इनपर एक 'अर्थ कोइलि' लिखी जिसमें इसका शरीर तत्त्व परक अर्थ किया गया है।

इनका दूसरा ग्रन्थ महाभाव है। यह अबतक अप्रकाशित है। यह एक तत्त्व परक ग्रन्थ है। इसमें शिव-पार्वती सम्वाद है। और श्री रामचन्द्रजीके ध्यानसे आत्मोत्थान इसका प्रतिपाद्य विषय है।

तत्त्व परक ग्रन्थोंको छोड़कर इस युगमें काव्य ग्रन्थ भी लिखे गए। इसी युगमें अर्जुनदासने 'राम-विभा' (राम-विवाह) नामक एक काव्य लिखा था ये सारला दासके परवर्ती थे। 'राम-विभा' के बालि सुग्रीव और हनुमानके जन्म वृत्तान्त सारला दासके अनुसार दिए गए हैं।

यह ग्रन्थ बारह छान्दो (सर्गों) में लिखा गया है और विभिन्न छन्दोंमें विभिन्न राग-रागिनियोंका व्यवहार किया गया है। इसमें विश्वामित्रके निमन्त्रण से लेकर परशुराम दर्प-दलन तक रामचरित वर्णित है। इसकी भाषा प्राचीन-सी लगती है। उपेन्द्र भञ्ज उनके पितामह धनञ्जय भञ्ज और उनके पूर्ववर्ती कवि

प्रताप राय कार्तिकदास प्रभृतिने 'राम लिभा' का उल्लेख किया है। इसी युगका और एक काव्य है उषाभिलाष । इसके रचयिता शिशुशंकर दास हैं। इनका समय निश्चित रूपसे निर्धारित नहीं है किन्तु प्रतापराय कार्तिकदास धनञ्जय भञ्ज प्रभृतियोंने इनके उषाभिलाष का उल्लेख किया है। इसमें बाणासुरकी कन्या उषा और प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका विवाह वर्णित है। इसमें सारलादासके महाभारतमें वर्णित 'उषा-हरण' का प्रभाव परिलक्षित होता है। उषाका पिता बाणासुर सहस्र भुज था और शोणितपुरका राजा था। सारलादासके अनुसार शोणितपुर वैतरिणीके तटपर था। इसमें श्रृंगार रस प्रधान है और कहीं-कहीं करुण और वीर रसके छींटे भी दिखाई पड़ते हैं।

इस युगकी और एक विशेषता है कि इस कालमें संस्कृतके काव्य ग्रन्थोंके उड़ियामें अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। कवि धरणीधरने जयदेवके 'गीत-गोविन्द' का उड़ियामें पद्यानुवाद किया है। अनुवादकी भाषा सरल और भाव प्रकाशनमें समर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युगमें उड़िया साहित्यका विभिन्न दिशाओंमें विकास हुआ।

मध्य-युग

मध्य युगका दो भागोंमें विभाजन किया गया है—पूर्व मध्य युग और उत्तर मध्य-युग।

(क) पूर्व मध्य युग पूर्व मध्ययुगको भक्ति युग भी कहा जा सकता है लेकिन यह भक्ति रागानुरागा नहीं ज्ञान मिश्रा है प्रेम प्रधान नहीं योग प्रधान है। इसमें काय साधना और पिण्ड-ब्रह्माण्ड तत्व प्रधान है। हम आदि कालके प्रति-दृष्टि डालें तो उसमें प्रधानतया तीन धाराएँ नजर आएँगी—धर्म धारा पुराण धारा और काव्य धारा। धर्म धारामें बौद्ध यान और बौद्धों की शून्य साधना आती है। चर्या पदमें है —

वेढ़समि महु छिह छाड़ै सुन
चिअ बिहुने पाप न पुण
चिअ सहजे शून्य सम्पुन्ना
काम्य विमोरा मा होहि विसना

इससे यह भी जाहिर होता है कि शून्यसे चित्त या मनका सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया है— मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयो। इस प्रकारकी शून्य साधनाके लिए काय साधना अपेक्षित है और काय साधनाके लिए नाड़ी बोध। इसलिए श्री काल चक्र तन्त्र में कहा है —

काया भावे न सिद्धिर्नच परम सुखं प्राप्यते जन्मनि और तस्मात् कायेऽपि देवी प्रतिदिन समये भावयेन नाड़ी योगं काम सिद्धयुपसिद्धि स्त्री भुवन

निष्प्य क्रियरत्नं प्रयाति। अर्थात् कार्य न होनेसे इस जगमें न सिद्धि, न परम सुख मिलता है। अतः काय सिद्धिके लिए प्रतिदिन समयके अनुसार नाड़ी योगका अभ्यास करना चाहिए। त्रिभुवनका निजस्व काय सिद्ध होनेसे अन्य सिद्धियाँ दासियाँ हो जाती हैं। इसमें कायको त्रिभुवन निजस्व कहा गया है। इसीमें पिण्ड-ब्रह्माण्ड संलग्न प्रीत है। इसलिए दोहा कोष में कहा है —

एत्थु से सुरसरि यमुना एत्थु से गंगा सायरु
एत्थु प्रयाग बाराणसी एत्थु से चन्द दिवाकरु

[इसीमें यह सुरसरित गंगा-यमुना है इसीमें गंगा सागर है। इसीमें प्रयाग वाराणसी है और इसीमें चन्द्र-सूर्य है।]

श्री काल चक्र तन्त्रके उपर्युक्त श्लोकमें और एक लक्ष्य करनेकी बात है—"प्रतिदिन समये। प्रतिदिनका समय क्या है? मेदिनीकारने समयका अर्थ दिया है—आचार, सिद्धान्त क्रियाकार इत्यादि। गोरखनाथके नामसे प्रचलित सप्तांग योग कारत का सम्भवतः इसीके साथ सम्बन्ध है। इस साधनाके अनुसार सातवारोंमें विभिन्न स्तर साधनाकी विधि है।

नाथ पन्थमें यही परम्परा चली आती है। इसमें भी नाड़ीयोगकी साधना बताई गई है और पिण्ड-ब्रह्माण्ड तत्वका उल्लेख है। सिद्धों और नाथोंका साधना मार्ग करीब-करीब एक है; अन्तर है उपास्य देवताओंमें। सिद्धोंके अनुसार—

पण्डिअ सअल सत्त वक्खाणइ
देहहि बुद्ध वसन्त न जाणइ

[पण्डित सकल शास्त्र व्याख्यान करता है किन्तु देहमें बुद्ध वास करते हैं यह नहीं जानता।]

अर्थात् देह स्थित बुद्ध ही उपास्य है। नाथोंके अनुसार बुद्धके स्थानपर शिव आ गए। और भी बौद्धोंके गुह्य समाज तन्त्रमें बुद्धकी युगनद्ध मूर्तिकी कल्पना की गई थी। उसके स्थानमें शिव-पार्वती आ गईं किन्तु इनमें सबसे अनुकूल राधाकृष्णकी युगल मूर्ति हुई। इसलिए उड़िया साहित्यके पूर्व मध्य युग या नवीन कालमें ललाट चक्रमें राधाकृष्णकी युगल मूर्तिके ही साक्षात्कारका उल्लेख मिलता है और इसीको नित्य गोलोक नित्यरास स्थल इत्यादि कहा गया है। श्री महाप्रभु उत्कलीय वैष्णवोंके मतमें मुख्य पुरीके जगन्नाथ और राधाकृष्णकी युगल मूर्ति एक और अभिन्न है। साधना मार्ग किन्तु वही रहा। साधना है काय साधना और योग है नाड़ी योग।

उड़िया साहित्यके इस पूर्व मध्य युगको पञ्चसखा युग भी कहा जाता है। पञ्च सखा हैं—बलरामदास जगन्नाथदास,अनन्तदास यशोवन्तदास और अच्युतानन्ददास। इसी समय चैतन्यदेव उड़ीसा आए थे और उड़ीसाके इन पाँच महापुरुषोंके साथ सख्य स्थापन किया था जिससे इनका पञ्चसखा नाम पड़ गया। वे पहलेसे पञ्चसखा थे भी। अच्युतानन्दकी शून्य संहिता में इनके लिए पञ्चसखा और

पञ्चसखा दोनों नाम आते हैं। पञ्चसखा या सम्प्रदायोंके मुख्य थे भी। इनकी पाँच गादियाँ थीं और उनमें बलराम समतारक मन्त्रके, जगन्नाथदास षोडश नाम या बत्तीस अक्षर मन्त्रके, यशोवन्तदास श्याम पञ्चाक्षर मन्त्रके, अनन्त दास एकाक्षर मन्त्रके और अच्युतानन्ददास नवाक्षर मन्त्रके उपासक थे। इससे यह पता चलता है कि वे समन्वयवादी थे।

पञ्चसखाओंमें प्रत्येकने ग्रन्थ लिखे थे। पहले कहा गया है कि आदि कालसे तीन धाराएँ चली आती थीं—धर्म-धारा, पुराण धारा और काव्य धारा।

बलरामदास : उनका जन्म-काल करीब ई० सन् १४७२ था। वे पञ्चसखाओंमें श्रेष्ठ थे। उनके पिताका नाम सोमनाथ महापात्र और माताका नाम अम्बुवती या यमुना था। वे ज्ञान मिश्र या योग मिश्र भक्तिके साधक थे। उनकी मस्ती देखकर श्री चैतन्य देव उनको मत्त बलराम कहा करते थे। इसलिए वे मत्त बलराम के नामसे प्रसिद्ध हैं। सिद्धिसे सम्बन्धित उनकी अलौकिक शक्तिकी अनेक घटनाएँ प्रचलित हैं।

उनका 'दाण्डि रामायण' उड़ीसामें अत्यन्त प्रसिद्ध है। सारलादासके महाभारतके समान दाण्डि वृत्त में लिखा गया था। इसलिए इसका नाम 'दाण्डि रामायण' पड़ गया। किन्तु मुद्रित पुस्तकमें इसको भी चतुर्दशाक्षरी वृत्तमें परिवर्तित कर दिया गया है। इसका असली नाम 'जगमोहन रामायण' है क्योंकि 'जगमोहन' अर्थात् जगन्नाथ जीकी आज्ञासे यह रामायण लिखी गई थी। सारलाके महाभारतकी तरह यह भी वाल्मीकि रामायणका ठीक-ठीक अनुवाद नहीं है। ऋष्य शृंग चरित्र, परशुराम चरित्र आदिमें अन्तर तो है ही, उनके अतिरिक्त उड़ीसाका गौरव बढ़ानेके लिए भी कई प्रसंग आते हैं, जैसे महादेवका वास स्थान कैलास उड़ीसाका कपिलास ही है। रावणने उड़ीसाके विरजाक्षेत्र (याजपुर) में तपस्या कर शिवजीसे वर प्राप्त किया था। वानर सेनापतियोंका जन्म-स्थान उड़ीसाके कोणार्क, अवलगिरि, बयाई, सामन्ता इत्यादिको बताया गया है। इसमें उड़ीसाका जातीय और सामाजिक जीवन पूर्णरूपमें प्रतिबिम्बित हुआ है। सीता भी उड़ीसाकी बहू-सी लगती है। यह ग्रन्थ पुराण साहित्यकी धारामें आता है। ।

उन्होंने योग और तत्व परक ग्रन्थ भी अनेक लिखे हैं। इनमें वेदान्तसार, ब्रह्माण्ड भूगोल, दीप्तिसार, सिद्धान्तडम्बर, अर्जुनगीता, अमरकोष गीता, गुप्त गीता आदि प्रमुख हैं। गुप्त गीताके केवल आठ ही अध्याय उन्होंने लिखे थे। उसका शेष भाग एक दूसरे बलरामदास ने पूर्ण किया।

उनके काव्योंमें बटअवकाश, पञ्चसखोरी, भाव समुद्र आदि प्रधान हैं। 'भाव समुद्र' भक्ति काव्यका एक अपूर्व ग्रन्थ है। गुण्डिचा या रथ यात्राके समय बलराम दासने [illegible] रथके ऊपर चढ़नेकी चेष्टा की तो राजाकी आज्ञासे पण्डोंने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया। इस अपमानसे रूठकर वे बांकी मुहाण चल गए, और वहीं

एक बालूके तीन रथ बना ठाकुरोंको बैठाकर जगन्नाथजीको खींचने एवं भिक्षा करने लगे। इधर रथ नहीं चला। जगन्नाथजीके आदेशसे जब गजपति महाराज स्वयं आकर उनको लाए तो रथ चला। इस स्तुतिमें इतना दर्प इतना अभिमान है कि एक सच्चा भक्त ही इसे लिख सकता है। इसमें रामकृष्ण और जगन्नाथ सब एक हो गए हैं। इसकी भाषा भी वर्णमयी और छन्द भी अत्यन्त अनुकूल है।

इसके कुछ पद देनेका लोभ सम्हाला नहीं जाता —

हरि हो—कालिरे विरल करिलि मुहिं ।
सञ्जीबे विलम्ब कर गोसाईं ॥
नाथ तु सारथि बने से थाउ ।
रथी बोलाइ केबे केबे थाउ ॥
हरि हो—हातके बाण मार होले चाउ ।
दास बळरामर तु हि आड ॥१४॥
हरि हो—से बाले बेले युझि परिवारन्तु ।
बलिआर तु ब कि या देखन्तु ॥१५॥
हरि हो—राधा सङ्गे कलु मिलन प्रीती ।
बोलरे पविता उज्ज्वल कीर्ति ॥
नाम तो रस मधुर लीला ।
ब्रजवेणुबाठे गोपीङ्कु मिलिला ॥
हरि हो—पवन धरि तो केबहला सिर ।
बळराम दास दृष्टि करिर ॥१८॥
हरि हो—लाज संकोच हय तोर नाहिं ।
सीताङ्कु रावण नेला चोराइ ॥
नायके पुरा केमन्ते आणिलु ।
ताङ्कु घेनि पुणि घर कु गलु ॥
हरि हो—से कथाकु लाज नोहिला तोर ।
बलिआ दास कु करिलु पार ॥२१॥
हरि हो—नरसीरि हरि पाषाण हेलु ।
शिळा शालग्राम नाम बहिलु ॥
नाथ तु बोपरे कलु अनीति ।
जय लीरि सेथे रखे पीरिति ॥
हरि हो—तेहि काळर हेलु दारु ब्रह्म ।
बळरामदास कु कर मोक्ष ॥२५॥

इत्यादि

इसमें इस प्रकारके ७४८ पद हैं। उसके अतिरिक्त उन्होंने कई चउतिशाएँ और कोइलिया लिखी हैं। उनका श्रीमद्भगवद्गीताका उड़ियामें गुप्त पद्यानुवाद भी मिलता है।

जगन्नाथदास पञ्चसखाओंमें द्वितीय सखा जगन्नाथदास हैं। उनका जन्मकाल करीब ई० सन् १४९० है। उनके पिता पुरीके निकट कपिलेश्वरपुर ग्रामके पुराण पंडा थे। पिताका नाम भगवानदास था और माताका नाम पद्मावती। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे और आठ सालकी उमरमें पुरी मन्दिरके कल्पवृक्षके पास भागवतकी प्राञ्जल व्याख्या करते थे। कहा जाता है कि १८ सालकी उमरमें बलरामदाससे उन्होंने दीक्षा ली थी और ६० सालकी उमरमें उनका तिरोभाव हुआ। श्री चैतन्य देव उनकी अलौकिक शक्ति देखकर उनको अतिबड़ कहने लगे। इसलिए उनकी अतिबड़ उपाधि हो गई और उनका सम्प्रदाय अतिबड़ी सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्ध है।

उनकी कृतियोंमें सबसे प्रसिद्ध श्रीमद्भागवतका पुहारी या नवाक्षरी छन्दमें सरल सुमधुर और सुललित पद्यानुवाद है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इस वृत्त का नाम भागवत पड़ गया। हिन्दी प्रान्तोंमें रामायणके समान या उससे अधिक यह उड़ीसामें प्रचलित है। इस पद्यानुवादके फलस्वरूप उड़ीसाके गाँव-गाँवमें भागवत टुंगी और घर-घर भागवत पोथी पाई जाती है। आज भी मृत्यु शय्याके पास हरिनाम और भागवतका यह अनुवाद सुनाया जाता है। इस भागवतका भी एकादश स्कन्ध अधिक प्रचलित है और कहीं-कहीं भागवतके नामसे इसका स्कन्ध ही समझा जाता है। जगन्नाथदासने एकादश स्कन्ध तक अनुवाद भी किया था। इसमें भी मूल भागवतसे थोड़ा बहुत अन्तर पड़ जाता है। द्वादश स्कन्ध और त्रयोदश स्कन्ध जोड़कर महादेवदासने इसको पूरा किया था।

उनके तरह तरहके ग्रन्थोंमें दारुब्रह्म गीता, गुप्त भागवत, 'तुलाभिणा', 'मन शिक्षा', अर्थ कोइली इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनमें भी वही ज्ञान-साधना आत्म-चिन्ता भक्ति जगन्नाथ माहात्म्य पिण्ड-ब्रह्माण्डका एकत्व आदि प्रतिपादित हुए हैं। इनके अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी प्राप्त हैं जिनमें कृष्ण भक्ति कल्पलता, कृष्णभक्ति रत्नाकर, नित्य गुप्त गीता, जगन्नाथ [illegible] सारणी आदि प्रसिद्ध हैं।

उनके काव्योंमें दशिमाद्य, बालटुंगीत, पद्मस्तुति, भृगुजी स्तुति, भुवनस्तुति आदि कई छोटी रचनाएँ हैं। ये सब भक्तिपरक हैं और इनमें भावोंकी पुकार प्रधान है।

यशोवन्तदास आपका जन्म ई. सन् १४९१–१४९३ में ओड़ंग हुआ था। उनके पिता का नाम बगुमल्लिक (बलभद्र मल्लिक) और माताका नाम रेखादेई था। १२ साल की उम्रमें घर छोड़कर उन्होंने भारतके अनेक तीर्थोंका भ्रमण किया और अन्तमें पुरी आए। प्रवाद है कि उन्होंने चैतन्य देवसे दीक्षा ली किन्तु वे गृहस्थका सा जीवन यापन करते थे। उन्होंने जमींदार रघुरामकी भगिनी अन्नपूर्णा देवीसे शादी की थी। उनका कोई पुराण नहीं मिलता। साधना परक ग्रन्थोंमें स्वरोदय ग्रन्थ का शिव स्वरोदय नामसे उड़ियामें पद्यानुवाद मिलता है। उसीसे उनकी और उस युगकी धार्मिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने प्रेमभक्ति ब्रह्म गीता लिखी थी जिसमें स्वर साधनासे समाधि लाभ और समाधि अवस्थामें राधाकृष्णके नित्यरासका वर्णन त्रिकुट पर किया गया है। उन्होंने राघ पटलिका और भविष्य पुराण मालिका आदि कई मालिकाएँ भी लिखी हैं। लेकिन उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति गोविन्द चन्द्र गीता है। यह उड़ीसामें अत्यन्त जनप्रिय है और नाथ पंथी जोगी केन्दरा (वाद्य यन्त्र) के साथ गा-गाकर भिक्षाटन करते हैं।

उनके कुछ भजन (निर्गुण भजन) भी प्राप्त हैं।

अनन्तदास उनका जन्म काल करीब ई. सन् १४९२ था। वे शिशु अनन्त के नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके पिता कपिल और माता गौरी थी। वे सूर्यके उपासक थे। प्रवाद है कि सूर्य देवताने उनको सूर्यनारायण एकाक्षर मन्त्र दिया था और एक हजार श्लोककी शिक्षा दी थी। सूर्यके उपदेशानुसार उन्होंने चैतन्यदेव और नित्यानन्दसे साक्षात्कार किया और नित्यानन्द गोस्वामीसे दीक्षा ली थी। वे योगमिश्रा भक्तिके साधक थे। उनके बहुत कम ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने कई भजन चौतिशा स्तोत्र पटल बाउन्न उपाय पटल अनन्त उपाय बाण्ठ गुप्त मालिका उपदेशाक्षर ठीकणाक्षर (बाक्यमालिका या भविष्यवाणी) और हेतु उदय भागवत एक बड़ा ग्रन्थ लिखा था। हेतु उदय भागवत में अवधूत धर्म गोरख योग तत्व माधवी तत्व राधाकृष्ण तत्व आदि वर्णित हैं। इसमें भी [illegible] माया' का प्रयोग किया गया है।

अच्युतानन्द दास उनके जन्मकालके विषयमें बहुत मतभेद है। किन्हींके मतमें ई. सन् १२. १. किन्हींके मतमें १४९० और दूसरोंके मतमें ई. १४८२ है। उनके पिता दीनबन्धु खुण्टिआ थे और माता पद्मावती थी। उनका जन्म तिलकणा ग्राममें हुआ था और उनकी गादी आज भी कटक जिलेके नेमाल में विद्यमान है। उनके दीक्षा गुरुके बारेमें भी मतभेद देखा जाता है। किन्हींने नित्यानन्द और दूसरे सनातन बताते हैं।

पञ्चसखाओंमें इनकी रचना सबसे अधिक पाई जाती है। मयाधार संहिता में कहा गया है कि —

छतिस संहिता अठसरी गीता बंशानु सप्तविंशरे।
उप बंशानु द्वादश अष्ट बेलि भविष्य दश अक्षरे॥
पद पदावली अलेक ये गम्य तनु श्रीकृष्ण महिमा।
तो आये संहिते बरजकुमार बहु सारस्वत सीमा॥

अर्थात् उन्होंने ३६ संहिताएँ, ७८ गीताएँ, २७ बंशानुचरितके साथ हरिवंश १२ उपबंशानुचरित २ भविष्य मालिकाएँ और एक लाख पद-पद आदि (जिससे कौइलि चौतीसा टीका बिकाल गोपाल गुज्झरी निर्णय भजन आदि शामिल हैं) लिखे थे।

उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। उनके अनेक प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थोंमें 'छाया संहिता' 'ज्योति संहिता' अनाद संहिता' 'मन्त्र संहिता' 'यन्त्र संहिता' 'तन्त्र संहिता' 'अनाहत संहिता' अनकिल महिमा' आदि प्रमुख हैं। प्रकाशित ग्रन्थोंमें पुराणोंमें सात खण्डोंवाला हरिवंश प्रधान है। यह संस्कृत हरिवंशका अविकल अनुवाद नहीं है इसमें नामतत्व निराकार तत्त्व योगतत्व सप्त पाञ्चालिक प्रक्रिया आदिका व्याख्यान किया गया है। इसमें योगाम्न वेदान्त सिद्धान्त नामान्त आदि सम्प्रदायों तथा विभिन्न मतोंका उल्लेख भी पाया जाता है। यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। इसमें अच्युतानन्ददास लिखते हैं —

"हिन्दु भावे अलेख तुरुक अलेख ये।
एणु अलेख तेजि अलेख हिन्दु भजे"॥

यहाँ कबीरका वचन याद आता है —

हिन्दु भजे अलेख तुर्क भजे अलेख।

इसके अलावा बहु अंकुलि अभाधार संहिता गरुड़ संहिता शून्यालीम पटल आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

उनकी और एक प्रसिद्ध कृति है गोपालक ओगाल ओ कड़ड़िखेळ (गोपालों का आगोटना और काठी खेल)। ओगालमें सुदामाका प्रश्न और श्रीदामाका उत्तर है।

इसी कालमें जीवनी साहित्यका प्रारम्भ हुआ। दिवाकरदासने पद्यमें जगन्नाथ चरितामृत लिखा जिसमें पञ्चसखाओंमेंसे एक अतिबड़ जगन्नाथ दास की जीवनी दी गई है। इसमें ज्ञानमिश्रा भक्ति या उत्कलीय वैष्णव धर्म प्रतिपादित किया गया है। विभिन्न सम्प्रदायों और शाखाओंमेंसे साथ चैतन्यदेव की जीवनी और गौड़ीय सम्प्रदायके अन्य वैष्णवोंके जीवनकी एक झलक मिलती है। दिवाकरदास ई. सनकी सोलह शताब्दीके प्रथमार्द्धके हैं। सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ईश्वरदासने चैतन्य भागवत लिखा था।

पञ्चसखाओंकी परम्परामें 'शिशुगर्भ पुराण' के रचयिता चैतन्यदास 'अनाकार संहिता' के रचयिता नन्ददास 'श्रुतावसार गीता' के रचयिता ब्रह्मनिधिदास 'परमे गीता' के रचयिता द्वारिकादास प्रमुख हैं। चैतन्यदासने 'निर्गुण माहात्म्य' भी लिखा था। ये खड़िमालके बड़मूल ग्रामके निवासी थे। द्वारिकादासने जगन्नाथदासकी भागवतको भी पूर्ण किया था। 'परमे गीता' योग तत्त्वका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उन्होंने 'परमे मूल्यमणि' 'शिव पुराण' आदि भी लिखा था।

इस युगमें और भी अनेक पुराण लिखे गए थे। महादेवदासने इसी कालमें 'मार्कण्ड पुराण' 'विष्णुकेशरी पुराण' 'पद्म पुराण' 'नीलाद्रि महोदय' 'कपिलेश्वर पुराण' 'कार्तिक पुराण' 'माघ पुराण' 'आषाढ़ पुराण' 'काशकी माहात्म्य' आदि लिखे थे। ये पुराणोंके ठीक-ठीक पद्यानुवाद नहीं बल्कि पौराणिक आख्यायिकाओंपर आधारित पुराण हैं। शिव कवीशिवका 'विचित्र हरिवंश' भी इसी कालका है। 'विचित्र' का अभिप्राय है कि यह विभिन्न छन्दोंमें लिखा गया है और बोलचालकी भाषाके उद्देश्यसे लिखित होनेके कारण कुछ पदमें संलाप भी आ गए हैं। कृष्णचरदासने 'अध्यात्म रामायण' का पद्यानुवाद भी किया था। गीतगोविन्द का 'रस वारिधि' नामसे वृन्दावनदासका और एक पद्यानुवाद भी मिलता है। इस कालमें भजन साहित्यमें सालबेग प्रसिद्ध हैं। वे मुसलमान थे किन्तु वे थे कृष्ण भक्त। उन्होंने अनेक रसात्मक भक्ति गान लिखे हैं।

यहाँ एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिए। पञ्चसखाओंके समय चैतन्य-देव उड़ीसामें आकर पुरीमें बहुत दिन तक रहे। पञ्चसखाओंने अपना वैशिष्ट्य रखते हुए भी चैतन्य देवकी महिमा स्वीकार कर लिया। धार्मिक सम्प्रदायोंकी गति और साहित्यपर इसका अत्यन्त प्रभाव पड़ा जिससे कितने ही प्रेम भक्तिके उपासक हो गए। गोदावरी नदीके तटपर रायरामानन्द और चैतन्यदेवका मिलन और संलाप ऐतिहासिक है। रायरामानन्द शुद्ध भक्तिके उपासक थे। उन्होंने ब्रजबुलि में कुछ पदावली लिखी है। ब्रजबुलि उन दिनोंके प्रेममार्गी वैष्णव पद रचनाओंकी भाषा ही कही जा सकती है। इसलिए उड़ीसामें भी ब्रजबुलि में लिखी हुई पदावली पाई जाती है। रायरामानन्द भी उसी प्रकारके कवि हैं। उनके संगीत आज भी पुरी जिलेके खोर्धा मण्डलमें गाये हैं। शिखी महान्तिकी बहुत माधुर्य वाणी भी इसी प्रकारकी कवितायें हैं। उनके अनेक पद बंगीय वैष्णव पदावलीमें पाये जाते हैं। उनके कई उड़िया पद भी पाये गए हैं। ब्रजबुलि की परम्परामें दामोदरचम्पति राय चम्प आदि कवि आते हैं।

सिर्फ ब्रजबुलि ही नहीं शुद्ध उड़ियामें भी कुछ भक्त कवि हुए थे। दीनकृष्णदासका 'छान्द चाव प्रभा' और 'राधाकृष्ण लीलामृत' भक्तिसे आप्लावित हैं। रामचन्द्रभञ्जने भी इसी परम्परामें 'मथुरामङ्गल' 'बंसीचोरी' आदि लिखी थी।

यह तो धर्म-धाराकी प्रवृत्ति हुई। आदि युगके बलराम दासकी रामविभा काव्य-धारा मरी नहीं थी। इस युगमें काव्यका भी विकास कम नहीं हुआ था। इस समयके काव्य दो प्रकारके पाये जाते हैं—एक पौराणिक कथावस्तुपर आधारित और दूसरा लौकिक या काल्पनिक कथावस्तु पर।

शिशुशंकरदासका उषाभिलाष कपिलेश्वरदासकी कपटकेलि हरिदासकी चन्द्रावती विलास कार्तिकदासकी रुक्मिणी विभा आदि कई पौराणिक काव्य हैं। 'उषाभिलाष' काव्यमें उषा-अनिरुद्धका प्रेम-परिणय वर्णित है। उनकी विप्रलम्भिता नायिकाके वर्णनका प्रभाव उपेन्द्रभंजपर भी पड़ा है। 'कपटकेलि' का विषय है—राधाका मान भंजन करनेके लिए श्रीकृष्णका नारी वेश-धारण या कपट रूपमें केलि। इस काव्यके प्रत्येक छन्द (मम) के प्रारम्भमें बाहा दी गई है। चन्द्रावती विलास में दुर्योधनकी पुत्री चन्द्रावती और श्रीकृष्णके पुत्र साम्बका मुग्ध प्रणय और विवाह वर्णित है। इसमें परवर्ती छन्दमें वर्णित विषयकी सूचना पूर्ववर्ती छन्दके अन्तमें दी गई है। रुक्मिणी विभा (विवाह) के नाममें ही इसकी कथावस्तु स्पष्ट है। शिशुशंकर दास इसका [illegible] है। उनका एक दूसरा काव्य मिलन 'मथुराम' जिसका विषय है राधा-कृष्णका प्रथम मिलन।

लौकिक या काल्पनिक कथावस्तुपर आधारित काव्योंमें प्रतापरायकी शशिसेणा रामचन्द्र पट्टनायककी हारावती धीवरदासकी कांचनलता रघुनाथ हरिचन्दनकी लीलावती आदि प्रधान हैं। शशिसेणा का आधार एक लोक कथा है। इसका नायक मन्त्रीपुत्र अहिमाणिक्य और नायिका राजपुत्री शशिसेणा है। विद्यालयमें ही उनका प्रेम शुरू हुआ था और अनेक विपत्तियाँ झेलकर अन्तमें उनका मिलन हुआ था। हारावती काल्पनिक कथावस्तु पर आधारित है और शृंगार रस प्रधान है। इसका नायक राजपुत्र नहीं है। वह एक साधारण बालक है। और नायिका अभिजात वंशकी नहीं बल्कि एक गुड़ियाणी (मिठाई बनानेवाली)की लड़की है। यही इसका एक प्रधान वैशिष्ट्य है। 'कांचनलता' एक काल्पनिक काव्य है। लीलावती की कथावस्तु तो काल्पनिक है ही साथ-साथ ही उसमें संगीतके ताल-लय का भी प्रयोग किया गया है। रघुनाथ हरिचन्दन एक अच्छे संगीतज्ञ थे।

(ख) उत्तर मध्य युग

उत्तर मध्य युगको रीति काल भी कहा जा सकता है। भक्ति कालके बाद रीति काल आता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें भक्ति कालकी धर्म-धारा बिलकुल बन्द गई। ज्ञानमिश्रा और श्रद्धा-भक्ति अथवा उत्कलीय और गौड़ीय दोनों धाराएँ चलती रहीं। अवश्य ही प्रेमभक्तिकी धारा प्रबल होने लगी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु पूर्वमध्य युगके अन्तिम कालमें रीति कालका सूत्रपात हो गया था। इस रीति कालका हिन्दीके रीति कालसे बहुत सादृश्य

है। इस कालमें पौराणिक और काल्पनिक दोनों प्रकारके काव्य पाये जाते हैं। इस युगके सभी काव्योंमें कथावस्तु और नायक-नायिका एक-से हैं। सबमें आकस्मिक दर्शन मिलन विरह अनुचिन्तन एवं पुनर्मिलन वर्णित है। नायिकाएँ निमित्त मात्र हैं। वर्णन प्रधान है। नायिकाओंमें देवियोंका राधा और सीता तक का नख-शिख वर्णन किया गया है। श्रृंगार रसका प्राधान्य है। कहीं-कहीं श्रृंगार अश्लील भी हो गया है। सब प्रकारके शब्दालंकारोंका और क्लिष्ट शब्दोंका यथेष्ट प्रयोग किया गया है। कोष ग्रन्थ लक्षण ग्रन्थ साहित्य शास्त्र काम शास्त्र और अन्यान्य शास्त्रोंकी साहित्य सर्जनामें सहायता ली गई है। नायक-नायिका लक्षण ग्रन्थोंका कहना ही क्या। उपेन्द्र भञ्जने इसको पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। इसलिए इस कालका नाम ही भञ्जकाल पड़ गया। वस्तुतः यह काल उनके पहलेसे ही शुरू हो गया था।

धनञ्जय भञ्ज (ई १६१७ से १७०१) धनञ्जय भञ्ज उपेन्द्र भञ्जके पितामह थे। वे घुमसरके राजा थे। उन्होंने रामायण पर आधारित 'रघुनाथ विलास' और काल्पनिक कथावस्तुपर आधारित 'त्रिपुर सुन्दरी' मदन मञ्जरी' 'रत्न-मञ्जरी' अनङ्ग रेखा' 'इच्छावती' आदि काव्य लिखे थे। उनपर 'रीति कालकी छाप स्पष्ट है। उनके 'रत्न परीक्षा' अश्व परीक्षा' और 'गज परीक्षा' ये तीन लक्षण ग्रन्थ और चौपदी भूषण आदि संगीत ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। उपेन्द्र भञ्जपर उनका प्रभाव स्पष्ट है। कहा जाता है कि रघुनाथ विलास को टक्करमें 'वैदेहीश विलास' लिखा गया था।

दीनकृष्णदास वे द्वितीय मुकुन्द देव (१६५१–१६८६) तथा दिव्य सिंह देव (१६८६–१७११) के समयमें जीवित थे। वे रीति-कवि थे। उन्होंने धार्मिक काव्यमें रीतिका और धर्ममें उत्कलीय और गौड़ीय भावधाराओंका समन्वय किया था। उन्होंने 'रस कल्लोल' काव्य लिखा था। जिसकी प्रत्येक पंक्तिका प्रथम अक्षर 'क' है। यह राधाकृष्ण परक एक अपूर्व काव्य है। 'क' आद्य नियमकी रक्षा करते हुए भी यह एक अत्यन्त ललित मधुर काव्य है। इसमें कविका उदात्त व्यक्तित्व स्पष्ट है। वे कविके बारेम कहते हैं —

कविता करी मुर्खंकु स्तुति
एमित कहु नाहिँ विपत्ति

और कविताके बारेम कहते हैं —

कवि होइ करथिबा निर्मल कवित्व।
कण्ठ देइ शुणु बिज रसिक जनिकन॥
किरिअचित करि आस्वाद करथिबा जाहा।
कहे कृष्ण कि मधुरे सेहिठारु शुण॥

इसके अलावा इनकी "रासगीता रसविनोद (तत्वपरक) 'प्रस्ताव सिन्धु' (उपदेश परक) 'नायकेलि' अलंकारकेलि' और बारह मास चौतीसा आदि अनेक कृतियाँ पाई जाती हैं।

भूपति पण्डित के सारस्वत ब्राह्मण थे और विरक्त होकर विष्णु सिद्धके समयमें उड़ीसा आये थे। वे चैतन्यदाससे मन्त्र लेकर उड़ीसी सम्प्रदायमें दीक्षित हुए थे। उड़िया अच्छी तरहसे सीखकर भागवतकारदासके भागवतके समान नवाक्षरी वृत्तमें 'प्रेमपंचामृत' लिखा था जिसमें कृष्णकी लीला वर्णित है। यह भी उड़ीसामें अत्यन्त प्रचलित है। उनका भूपति चौंतीसा के नामसे एक चौंतीसा भी मिलता है।

देव दुर्लभ दास उनकी रहस्य मञ्जरीपर ज्ञानमिश्राकी अपेक्षा मधुरा-भक्तिका प्रभाव अधिक है। उन्होंने अष्टदल कमल केशर और महायोग पीठमें स्थित यशलालजीकी स्तुति करते हुए भी गोपियों का और गोपियोंमें भी राधाका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया है। उनके मतमें गोपियोंके प्रसादसे ही प्रेम भक्ति मिलती है। इनका काल निश्चित नहीं है।

वृन्दावती दासी और उनका परिवार पूर्ण रूपसे गौड़ीय सम्प्रदायके अनुयायी था। उनके पति चन्द्रशेखरदासने १६९२ ई में कृष्ण तत्व चन्द्रोदय पुत्र भीमदासने हरिभक्त चन्द्रोदय और भक्ति रत्न माला और उनके पौत्र कृपासिंधुदासने १६९८ मे उपासना चन्द्रोदय लिखा था। उन्होंने स्वयं पूर्णतम चन्द्रोदय लिखा था। इसमें श्रीकृष्ण द्वारिकामें पूर्ण मथुरामें पूर्णतर और ब्रजमें पूर्णतम प्रतिपादित किए गए हैं।

लोकनाथ विद्याधर वे बाजपुरके अधिवासी थे। उन्होंने 'सर्वांग सुन्दरी' पद्मावती परिणय चित्रकला रसकला चित्रोत्पला परिमला और 'वृन्दावन विहार लिखा था। वृन्दावन विहार एक पौराणिक काव्य है और उसमें कृष्ण लीला वर्णित है। बाकी सभी काल्पनिक काव्य हैं। उनके काव्योंमें श्लेष यमक अन्तर्लिपि बहिर्लिपि तथा गोमुत्रादि बन्धोंका समावेश है और उनम रीति कालके सब लक्षण विद्यमान हैं। पद्मावती परिणय' ई १७ २ में पूर्ण हुआ था।

त्रिविक्रम भञ्ज उनकी कनकलता भी इसी प्रकारका एक काव्य है। इसपर रीति कालकी छाप स्पष्ट है। वे उपेन्द्रभञ्जके चाचा थे।

उपेन्द्र भञ्ज वे भी उपर्युक्त पृष्ठ भूमिमें पैदा हुए थे। उनका जन्म ई १६८२ में और मृत्यु ई १७२२ में हुई थी। वे घो घुमसर राज परिवारके थे और धनञ्जय के पौत्र थे। पहले कहा गया है कि पौत्रपर पितामहका यथेष्ट प्रभाव पड़ा था। दीनकृष्णका भी उनपर प्रभाव कम न था। उनका प्रसिद्ध वैदेहीश विलास काव्य धनञ्जय भञ्जके रघुनाथ विलास के टक्करमें लिखा गया था। नाममें स्पष्ट है कि दोनोंके विषयवस्तु एक ही है। किन्तु नाम रखा गया रघुनाथ

विकास की जगह पर वैसेही विकास । नामके समान ही यह सारा काव्य व कारादि नियमसे लिखा गया है। हर एक पंक्तिमें आदिमें वकार आता है जैसा कि दीनकृष्णदासके 'रसकल्लोल' में ककार से पंक्तियाँ शुरू होती हैं। सिर्फ इतना नहीं इसके प्रत्येक छन्द (सर्ग) में बारह बत्तीस आदि वकारादि संख्याके पद भी आए हैं। उन्होंने 'रसकल्लोल' के टक्करमें एक बड़ा कौतुक किया था जिसमें नामके समान आदि और अन्त दोनोंमें 'क' है।

इनके अन्य पौराणिक काव्योंमें 'सुभद्रापरिणय' 'व्रज लीला' 'कृष्ण विहार' 'रामलीलामृत' 'अवतारलहरीरङ्ग' आदि मुख्य हैं। 'सुभद्रापरिणय' में 'स' कारादि नियमका पालन किया गया है। 'अवतारलहरीरङ्ग' सम्पूर्ण काव्यमें 'अ' या 'इ' कारादि मात्रा कोई नहीं है। उनके काल्पनिक काव्योंमें मुख्य हैं—'लावण्यवती' 'कोटिब्रह्माण्ड सुन्दरी' 'रसिकहारावली' 'प्रेम सुधानिधि' 'भावती' 'सोभावती' 'इन्द्रावती' 'कलावती' आदि। उनका एक आलंकारिक ग्रन्थ है 'रसपञ्चक' जिसके पाँच परिच्छेदोंमें र स प ञ्च क पाँच अक्षर आदिका नियम रक्षित है। 'चित्र काव्य बन्धोदय' एक चित्र और बन्ध काव्यका अच्छा नमूना है। उन्होंने एक कोष ग्रन्थ भी लिखा था। 'गीता विहार' में कान्त शान्त आदि अलंकारोंको लेकर शब्दोंको सजाया गया है। एतद्व्यतिरिक्त इनकी 'छान्दभूषण' 'षड् ऋतु' आदि अनेकानेक कृतियाँ और रचनाएँ पाई जाती हैं।

इनकी रचनाओंमें रीति कालके सभी लक्षणोंका सम्पूर्ण विकास हुआ है। कथा-वस्तुमें हिन्दीके रीतिकालीन काव्यके साथ काफी समानता है। क्लिष्टता और कूटोक्ति बहुत मालूम है। कहीं कहीं पढ़नेमें पद अत्यन्त सरस और सरल लगते हैं। किन्तु उनमें कोई भीतरी बात छिपी रहती है। एक पद लीजिए। स्वप्नमें लावण्यवतीके साथ चन्द्रभानका संगम होनेके बाद चन्द्रभान चला जाता है और लावण्यवतीकी नींद टूट जानेपर उपेन्द्र भञ्ज कहते हैं —

देखि चातुरी चाहिँला मिथ्या भावे बाधे नाहिँ चित्त तरल
मारिहुरे झुरि बाम भाव चौंकि अति चकोवरे धावन।
बोले अमीरे! देखना हुत पे बिधिरे,
छेव लेउटाइ कचरी खिटाइ कर बारि कुच सबिरे॥

पद बड़ा कठिन है! पद सरस और ललित है। किन्तु प्रश्न उठता है कि लावण्यवती चन्द्रभानको ढूँढ़ती है तो मत्स्य क्यों उलटती है? कचरी क्यों खोजती है और कुच-सन्निधपर हाथ क्यों फेरती है? इसका अभिप्राय है कि नायकका नाम चन्द्रभानु है अर्थात् नायक चन्द्र और भानु है। इसलिए क्या वे मुक्ता राशिमें चले गए? शय्यामें भी मुक्ता राशि है क्या उसको राहु निगल गया? केश-भार राहुके समान काला है क्या वे अस्ताचलमें चले गए? कुच अस्ताचल पर्वतके समान उच्च है। इस प्रकार के उनके अनेक कूट पद हैं।

सचमुच रीति रचनामें वे अद्वितीय हैं। इसलिए इस युगको भञ्ज युग कहा जाता है।

घन भञ्ज वे भी घुमसरके इसी भञ्ज घरानेमें पैदा हुए थे और वे धनञ्जय भञ्जके छोटे भाई गोविन्द भञ्जके लड़के थे। उन्होंने भी 'रसनिधि' और 'त्रिलोक-मोहिनी' रीति काव्य लिखा था।

रीति मार्गके सिवाय अन्य धाराएँ भी प्रवहमान थीं। विश्वनाथ खुण्टियाने विचित्र महाभारतके समान विभिन्न छन्दोंमें अत्यन्त सरल वाणीमें 'विचित्र रामायण' लिखी थी जो अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। सिर्फ आजकल ही नहीं उन दिनों भी शिशुओं और प्रौढ़ोंके लिये साहित्य सृष्टिकी जाती थी। विचित्र रामायण उसी प्रकारकी सृष्टि है। बनाई दासकी 'गोपी भाषा' भी इसी प्रकार का साहित्य है। कृष्णके मथुरा गमनके बाद गोपियोंकी करुण अवस्था इसमें बड़े मर्मस्पर्शी ढंगसे वर्णित है। इसकी भाषा सरल और मधुर है। इसमें कुछ अश्लीलता भी आ गई है। पुराण धारामें पिताम्बरदासका नरसिंह पुराण आता है। यह मूल रचनाका अविकल अनुवाद नहीं है इसमें बहुत अन्तर है। जीवनी धारामें रामदासकी दार्ढ्यता भक्ति आती है। भक्त माल के समान इसमें भक्तोंकी जीवनी दी गई है— जैसेकिया जुलाहा कबीर की थी।

पूर्वोक्त आलोचनासे पता चलता है कि मध्यकालके उड़िया साहित्यमें दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट थीं एक धर्म की ओर दूसरी रीतिकी। साथ-साथ यह भी लक्ष्य करनेकी बात है कि पञ्चसखाओंके समय चैतन्यदेव उड़ीसा आये थे और धीरे-धीरे उनका भी सम्प्रदाय जड़ जमाने लगा था। काल क्रमसे उड़ीसा वैष्णव धर्मका स्थान गौड़ीय वैष्णव धर्म लेने लगा। इसलिए मध्यकालीन साहित्यके बाद उड़िया साहित्यमें गौड़ीय वैष्णव धर्म और रीतिकालीन लक्षण दोनोंका समन्वय देखनेमें आता है। इस कालका काव्य प्रायः राधा कृष्ण प्रेम परक है और कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गई है। किन्तु राधाकृष्णकी लीलाको अश्लील नहीं कहा जा सकता। उनमें प्रधान प्रधान कवि हैं—सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा (साधुचरण दास)। वे नयागढ़ रियासतके सिकारी पड़ामें पैदा हुए थे और पुरीके राजा वीर किशोरदेव (१७२० से १७८१) से उनको कविसूर्य ब्रह्मा की उपाधि मिली थी। उन्होंने 'कीर्तन उज्ज्वल' के रचयिता बाबा किशोरदाससे दीक्षा ली थी और उनका दीक्षा नाम था साधुचरण दास। वे गौड़ीय सम्प्रदायके अनुयायी थे। वैदेहीश विलास के समान उन्होंने 'ब' आद्य नियमसे विश्वम्भर विलास काव्य लिखा था। उन्होंने प्रेम तरंगिणी 'प्रेमलहरी प्रेमचिन्तामणि ललित लोचना रसदीपिका युगलरसामृत लहरी युगलरसामृत भँवरी आदि अनेक ग्रन्थ लिखे थे। युगलरसामृत लहरी के द्वितीय छन्दमें (खण्ड) प्रत्येक पदके प्रत्येक पंक्तिके आदिमें 'क' 'का' 'कि' आदिके बाद 'अ' 'आ' आदि स्वरमाला

नियम और प्रत्येक पंक्तिके अन्त्य वर्ण, रेफ युक्त वर्णका नियम पालन किया गया है। उनके काव्योंमें राधाकृष्णका प्रेम ही मुख्यतया वर्णित है। और किशोरदेवके पुत्र श्यामसुन्दरदेवने अनुराग कल्पलता लिखी थी जिसमें अक्षरादि नियम पालित है। यह भी राधाकृष्ण परक कृति है।

भक्त चरणदास उनका मथुरा मंगल उड़ीसामें अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें कृष्णके कंस वध तककी लीला वर्णित है और गोपियोंका विच्छेद और विरह वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। रीति काल का स्पर्श रहते हुए भी भाषा सरल है। इसमें ज्ञानकी अपेक्षा प्रेमके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया गया है। उनका मनबोध चौतीशा भी मोहमुद्गरके समान चूमनेवाली भाषामें लिखा गया है। यह भी अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसके अलावा कथा कल्पेवर, चौतीसा मनशिक्षा आदि और भी उनकी कई रचनाएँ पाई जाती हैं।

अभिमन्यु सामन्त सिंहार (१७५७–१८०७) उनके शिक्षा और दीक्षा गुरु साधु चरणदास (सदानन्द कविसूर्य) थे। वे राजपूत थे और उनके पूर्व पुरुष पश्चिमसे आए थे। उनके 'विदग्ध चिन्तामणि'में माधुर्य भक्ति और रीति का अपूर्व समन्वय है। दीनकृष्णदासके 'रसकल्लोल' और उपेन्द्रभञ्जके 'वैदेहीश विलास' के साथ इसकी गणना हो सकती है। रीति कालकी सारी विशेषताएँ इसमें विद्यमान हैं साथ-साथ विदग्ध माधव ललित माधव आदिमें प्रतिपादित प्रेम-माधुर्य और काव्य—माधुर्यसे भी यह रचना आप्लावित है।

कवि जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें उन्होंने प्रीति चिन्तामणि सुलक्षणा रसवती प्रेमकला रसकला आदि कई काल्पनिक काव्य और कुछ गान भी लिखे थे।

इस कालमें कई संगीत या पदावली कर्ता भी हुए हैं जिनमें बनमाली पट्टनायक गौरचरण अधिकारी गोपालकृष्ण पट्टनायक प्रसिद्ध हैं। राधा कृष्ण प्रेम ही इन सबके काव्यके उपजीव्य है। गोपाल कृष्ण ई १८२९ तक जीवित थे। कोटिपुर उड़ीसी भाषामें उनके पद बहुत गाये जाते हैं।

इसी कालमें सिंहभूम हरिचरणने 'वसन्तरास' लिखा था। जिसकी भाषापर ब्रजबुलि का प्रभाव दिखाई देता है। यह भी संगीतमय है। इस संगीतकी परम्परामें बलदेवरथ कविसूर्य आते हैं। उनका चम्पू अत्यन्त संगीतमय और प्रसिद्ध है। उन्होंने 'किशोर चन्द्रानन चम्पू' 'रत्नाकर' आदि चम्पू काव्य लिखे हैं। किशोर चन्द्रानन चम्पूका गद्यांश संस्कृतमें और पद्यांश उड़िया भाषामें लिखा गया है। चौतीसाके समान प्रत्येक गीतकी प्रत्येक पंक्तिके आदिमें 'क' 'ख' 'ग' आदिका नियम रक्षित है। ये चम्पू गीत भी कोटिपुर में अत्यन्त प्रचलित हैं। उनकी मृत्यु ई १८४८ में हुई थी। उन्होंने 'चन्द्र कला' नामक एक काल्पनिक काव्य भी लिखा था। इससे पता चलता है कि प्रेम भक्ति और रीतिका सब जगह सम्मिश्रण नहीं हो पाया था बल्कि विशुद्ध रीति काव्य भी लिखे जाते थे।

विशुद्ध रीति परम्परामें यदुमणि महापात्र भी आते हैं। रीति क्रमानुसार उनके 'प्रबन्धपूर्णचन्द्रोदय' में भी कृष्ण और रुक्मिणीका विवाह वर्णित है। वे हास्य प्रिय भी थे और 'यदुमणिरहस्य' नामसे उनकी हास्य पूर्ण रचनाओंका एक संग्रह पाया जाता है। उनका जन्मकाल ई० १८१० और मृत्यु काल ई० स० १८५६ था।

इस धारामें प्रधानतया दो व्यक्तित्व पाये जाते हैं—एक ब्रजनाथ बड़जेना और दूसरे भीम भोई। ब्रजनाथके दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं—'समरतरंग' और 'चतुर्विनोद'। समर तरंगमें तत्कालीन एक ऐतिहासिक घटना—नागपुरके चिमनाजी बापूके साथ ढेंकानालके राजा त्रिलोचन महेन्द्र बहादुरके युद्धका वर्णन निराले ढंगसे किया गया है। इसमें हास्य रसका भी समावेश है। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। 'चतुर्विनोद' एक हास्य रस प्रधान काव्य है और वह भी गद्यमें। चतुर नाममें स्पष्ट है—चतुर या पण्डितोंका विनोद जिसके चार भेद किये गये हैं—हास्यविनोद रसविनोद नीतिविनोद और प्रीति विनोद। उनका 'गुण्डिचाविजे' नामका एक काव्य मिलता है। यह हिन्दीमें सोरठ रागमें लिखा गया है। सम्भवतः उन दिनों भी हिन्दी राष्ट्रभाषा थी। उन्होंने कई रीति काव्य भी लिखे थे—'अम्बिकाविलास', 'श्यामरासोत्सव', 'कौतुकचिन्तामणि' आदि। उनका जन्म ई० १७१ में और मृत्यु लगभग ई० १७९५ में हुई थी।

भीम भोई जन्मान्ध थे और जातिके कन्ध (आदिवासी)। वे कुम्भिपटिया या महिमा धर्मके अनुयायी थे और महिमा गोसाइँके उपासक। वे निरक्षर थे किन्तु उन्होंने जनताकी सरल और सबल भाषामें स्तुति चिन्तामणि ब्रह्म निरूपण गीता और अनेक भजनोंकी रचनाकी थी। उनकी रचनाओंमें महिमा धर्मके अनुसार निराकार पुरुषका प्रतिपादन किया गया है। वे सचमुच प्रज्ञाचक्षु और प्रज्ञावान् थे। उनका काल है ई० १८५०—१८९५। इसलिए रीति काव्य उनको नहीं रखना चाहिए। लेकिन साहित्य प्रवृत्तिकी दृष्टिसे वे 'भीम मान भो दौड़' और पञ्चसखाकी परम्परामें आते हैं न कि आधुनिक कालमें। इसलिए उनको यहीं स्थान दिया गया है।

आधुनिक युग

मध्य युगमें मुगल काल (ई० १५६८–१७५१) और मराठा काल (ई० १७५१–१८०३) तथा बादमें ब्रिटिश काल शुरू हो जाता है। अंग्रेज उड़ीसामें ई० स० १८०३ में आए और यहींसे आधुनिक युग प्रारम्भ होता है। आधुनिक युगका प्रचलन प्राय सब प्रान्तोंमें एक-सा हुआ है। परिस्थितिके अनुसार कहीं आगे और कहीं पीछे कहीं कम तो कहीं ज्यादा।

ई० सन् १८०१ में अंग्रेजोंके आ जानेपर ईसाई मिशनरी लोगोंके धर्म प्रचार को बढ़ावा देनेके लिए, श्रीरामपुरसे बाइबिलका उड़िया अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अंग्रेजी उड़िया अभिधान और अंग्रेजोंमें उड़िया व्याकरण भी लिखा गया। शिक्षा की नीति भी बदल दी गई और एक नव शिक्षित समाज

उभरकर सामने आया। अंग्रेजी पढ़ने वालों को नौकरीमें सुविधाएं दी जाने लगीं। नाना प्रकारसे लोगोंको अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी शिक्षाके प्रति आकृष्ट किया गया। उसी कालमें उड़ीसामें भीषण अकाल पड़ा जिससे ईसाई धर्मके विस्तार और प्रचारको बहुत सहारा मिला। इसका सञ्चालन बंगालसे होता था। मिशनरी लोग वहींसे आते थे। उड़ीसापर अधिकार जमानेके पहले बंगाल अंग्रेजोंके शासनाधिकारमें आ चुका था। बंगालमें राजा राममोहन रायके प्रभावसे वहां अंग्रेजी शिक्षाका प्रचार और उसके फलस्वरूप एक नव्य शिक्षित समाजकी सृष्टि हो चुकी थी। उसके अनुरूप नये साहित्यका आविर्भाव वहाँ भी हुआ। लोग आकृष्ट हुए और उसी प्रकारके एक समाजकी सृष्टि हुई। इसके मूलमें अंग्रेजी भाषा और आधुनिक पद्धतिकी शिक्षा थी। इसलिए जो काम पहले मिशनरी लोगोंके हाथोंमें था उसीको उड़ीसाके बंगाली मराठी और उड़िया लोग भी करने लगे। यह नूतन शिक्षाका काल था और यह करीब ५० साल तक चलता रहा। इसलिए इसको पाठ्यपुस्तक काल भी कहा जा सकता है। अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे अंग्रेजोंके आचार व्यवहार और साहित्य के प्रति भी लोग आकृष्ट हुए और यहांके साहित्यमें एक विप्लव आया किन्तु वे प्राचीन प्रान्तीय साहित्य और संस्कृत तथा फारसी साहित्यसे सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न नहीं हुए। हिन्दी साहित्यका भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा। उसी कालके प्रधान कवि राधानाथ राय हैं।

राधानाथ राय उनके पूर्व पुरुष बंगाली थे। उनका जन्म ई० १८४८ में और देहान्त ई० १९०८ में हुआ था। उनकी शिक्षा प्रवेशिका परीक्षा तक ही हुई थी। वे पहले शिक्षक थे और बादमें विद्यालय निरीक्षक हुए। उन्होंने कई पाठ्य पुस्तकें भी लिखी थीं किन्तु वे अपने काव्यके लिए प्रसिद्ध हैं। उनपर शेक्सपियर, मिल्टन, वाल्टर स्काट आदिका प्रभाव स्पष्ट है। उन्होंने पिरेमस और थिस्बेके आधारपर केदार गौरी और बटलम्द्रल के आधार पर तथा कालिदासके कुमारसम्भवके आधारपर पार्वती (अपूर्ण) काव्य लिखा था। किन्तु ग्रीक कहानियोंपर आधारित होनेपर भी इनके नाम इस प्रकार बदल दिए गए हैं और उड़ीसाके स्थानों उनकी नदियों पहाड़ों और भूगोलको इस प्रकार जोड़ दिया गया है कि इनमें विदेशीपन झलकता ही नहीं। सचमुच वे अत्यन्त कुशल शिल्पी हैं। चिलिका उनका एक खण्ड काव्य है और उसमें उनका देशात्मबोध और पुरातत्त्वबोध एवं सौन्दर्यबोध स्पष्ट है। उन्होंने 'नन्दिकेश्वरी' 'ययातिकेशरी' आदि कुछ ऐतिहासिक काव्य भी लिखे हैं। ये सब उड़ीसाके इतिहासपर आधारित हैं। महायात्रा अमित्राक्षर छन्दमें लिखित प्रथम उड़िया महाकाव्य है। इसपर मिल्टनका प्रभाव स्पष्ट है। इसकी भाषा बड़ी ही उद्दीप्त है। इसमें युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण वर्णित है। उन्होंने मेघदूत और तुलसी रामायणके नामसे तुलसी पदावलीका

उड़ियामें पद्यानुवाद भी किया है। उन्होंने पौराणिक रीतिसे वेणीसंहार लिखा था। इसके अलावा 'दुर्योधनका रक्तनदी सन्तरण' 'शिवाजीकी उत्साहवाणी' आदि कई फुटकर कविताएँ भी लिखी हैं। १८९९ ई. में बारबाटी किलेमें अनुष्ठित दरबारको लक्ष्य कर उन्होंने 'दरबार' नामसे एक व्यंगात्मक कविता भी लिखी थी। उसमें उपाधि पाने वालोंको लक्ष्य करते हुए, अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे कुपथगामी लोगोंकी खिल्ली उड़ाई गई है। इतालीय 'युवा विवेकी' आदि उनके कुछ गद्य भी पाए जाते हैं किन्तु उसे गद्य नहीं कहा जा सकता। पद्यकी भाषा और शैलीमें उन्होंने एक युगान्तरकारी परिवर्तन किया। आधुनिक युगके वे स्रष्टा माने जाते हैं। उनकी रचनाएँ राधानाथ ग्रन्थावली के नामसे छपी हैं।

मधुसूदन राव (ई. १८५३–१९१२) इस कालके एक और यशस्वी कवि थे। उनके पूर्व पुरुष मराठे थे। उन्होंने एफ.ए. तककी शिक्षा ग्रहण की थी और राधानाथ रायके समान पहले शिक्षक होकर बादमें स्कूल इन्स्पेक्टर हुए। किन्तु प्रकृतिसे वे शिक्षक ही थे। उन्होंने अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखीं और उसी प्रसंगमें अनेक कविताएँ भी। उनके गीत और कविताएँ उड़िया साहित्यमें एक प्रमुख स्थान रखती हैं। वे ब्रह्मसमाजी थे। अतः उनकी कविताओंका प्राण था आनन्दमयता भक्तिभाव और ईश्वर प्रेम। इसलिए वे भक्त कविके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनकी जीवन चिन्ता आशाके प्रति वर्षा प्राते देवालयरत हिमाचलके उदय उत्सव पद्मध्वनि आदि कविताओंमें ये भाव स्पष्ट हैं। उनकी कविताओंमें देशात्मबोध की भी छाप स्पष्ट है। उन्होंने चतुर्दशपदी (Sonnet) भी लिखी थी।

उड़ियाका गद्य भी उनका ऋणी है। गद्यकी भाषाको उन्होंने परिमार्जित रूप दिया और प्रबन्ध साहित्यका प्रवर्तन किया। उन्होंने बाल रामायण 'उत्तर रामचरित' और कुछ अंग्रेजी कविताओंका अनुवाद भी किया था। अलेक्जेन्डर सेलकिर्क नामक अंग्रेजी कविताका "निर्वासित का विलाप" नामसे अत्यन्त सफल अनुवाद किया है। उनकी रचनाओंका संग्रह एक ग्रन्थावलीमें छपा है।

रामशंकर राय वे विशेषकर नाटककारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उन्होंने प्रेमतरी नामसे एक गाथा काव्य लिखा था। उनका विलासिनी एक उपन्यास भी उपलब्ध है जिसमें मराठाकालीन उड़ीसाका समाज चित्रित है। उससे पहले सौदामिनी नामसे एक उपन्यास मधू मासिक पत्रिकामें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। किन्तु पत्रिकाका प्रकाशन बन्द हो जानेके कारण वह अधूरा हो रह गया और शेष अंश खो भी गया। उनका *एक और उपन्यास उन्मादिनी का कुछ अंश इन्द्रधनु पत्रिकामें* प्रकाशित हुआ था किन्तु थोड़े ही दिनोंमें पत्रिका ही बन्द हो गई। जो कुछ भी हो वे उड़ीसाके प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। बंगला नाटकोंका अभिनय देखकर उनकी दृष्टि नाटककी ओर आकृष्ट हुई। लोग कहते थे कि उड़ियामें नाटक सफल हो ही

नहीं सकता किन्तु उन्होंने पुरुषोत्तमदेवके चरित—केजनमें ढ़ाम लगाया और 'काञ्चकावेरी' नाटक लिखा। इसका अभिनय सफल हुआ जिससे उत्साहित होकर और लोग भी नाटक लिखने लगे। उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक और पौराणिक नाटक, गीति नाटक, प्रहसन तथा यात्रा आदि विषयोंपर भी लिखे हैं। उनके नाटक हैं—'काञ्चकावेरी', कलमाला, राम बनवास, कनसन, विस्मोदक, युग धर्म, 'काञ्चनमाली', चैतन्य लीला, लीलावती, रामाभिषेक, विवाह मत्र (गीति नाटय), कलिकाल और बुढ़ावर प्रहसन हैं तथा 'बडलोक' एक यात्रा है। उन्होंने हिन्दुस्तानी राग रागिनियोंका नाटकोंके पात्रोंमें सफल प्रयोग किया है। उन दिनों जातीयताका उन्मेष हो चला था तथा साथ ही साथ समाज सुधारकी भावना भी चल रही थी। ये दोनों उनकी कृतियोंमें प्रतिफलित हैं। किन्तु वे समाज सुधार आय संस्कृतिके परम्परानुसार चाहते थे न कि अंग्रेजी शिक्षाकी अन्ध अनुकृति पर।

इसी कालमें उमेशचन्द्र सरकारने 'पद्‌माली' नामक उपन्यास लिखा था। इनके अलावा भक्तिचरण महापात्र, चन्द्रमोहन महाराणा, वामण्डाके राजा सुडल देव आदि और कई लेखक हो गए हैं।

आधुनिक कालके पूर्वोक्त प्रथम पर्यायमें अंग्रेजोंने अपना अधिकार दृढ़ कर लिया और इसी उद्देश्यसे अंग्रेजी शिक्षाकी नींव भी सुदृढ़ कर दी थी। भारतमें अंग्रेजी शिक्षा तीन सूत्रों—शोषण, शासन और सत्कारपर प्रतिष्ठित थी। वे यहाँ शोषण करनेके लिए आए थे, इसलिये शासनकी बागडोर हाथमें लेना जरूरी हुआ। और उसके लिए शिक्षाके माध्यमसे एक वर्गकी सृष्टि करना भी आवश्यक हुआ, जिससे लोग अपनेको अंग्रेजोंका दूसरा संस्करण समझे। इस प्रकार यहाँ दो शोषक वर्गोंकी सृष्टि हुई, एक जमींदारोंकी और दूसरी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नौकरशाहोंकी। एक बात और। उस समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा एक प्रान्त था और उसकी राजधानी कलकत्ता थी। अंग्रेजोंने एक सूर्यास्त कानून (Sun-set Law) बनाया जिसके अनुसार जो जमींदार सूर्यास्तके पहले बकाया रकम नहीं चुका देता था उसकी जमींदारी उसी दिन नीलाम की जाती थी। इस कानूनके कारण उड़ीसाकी अनेक जमींदारियाँ बंगालियोंके हाथमें चली गईं। एक परम्परागत पुराने समाजका लोप हुआ और नये समाजका आविर्भाव। बंगालमें पहले अंग्रेजी शिक्षा फैली और बहुत अफसरान उड़ीसा आए। यहाँ की शिक्षाके पतनमें भी उन्हीं लोगोंका मुख्य हाथ था। ठीक उसी समय राजेन्द्रलाल मित्र आदि लोगोंने एक आन्दोलन चलाया कि उड़िया एक स्वतन्त्र भाषा नहीं है। इस प्रकार उड़ीसा प्रदेश, उड़िया भाषा और उड़िया संस्कृतिके ऊपर एक भारी विपत्ति दिखाई दी। सम्मिलन विक्षोभों और सदुद्देश्यनाओंके प्रतिकारके लिए यहाँ 'उत्कल सम्मिलनी' नामकी एक संस्था १९०३ ई० में स्थापित की गई जिसके प्रतिष्ठाता मधुसूदन दास थे। इनके अलावा

एक और उत्कल साहित्य सम्मिलनी प्रतिष्ठित हुई। इसके पहले भी भाषा और साहित्यके उत्थानके लिए कुछ लोग सामने आए, जिनमें मुख्य थे फकीरमोहन सेनापति।

तेजस्वी फकीर मोहन सेनापति (ई १८४३–१९१८) वे साधक और कुशल शिल्पी थे। उन्होंने चार उपन्यास लिखे लछमा छमाण आठगुण्ठ मामुं और प्रायश्चित। मराठा शासन कालके पीड़ित उड़ीसाका एक करुण चित्र 'लछमा' में दिया गया है। परम्परा हीन नये जमींदार वर्गके निर्लज्ज शोषण का वीभत्स चित्र छमाण आठगुण्ठ के जमींदार रामचन्द्र मंगराजमें दिया गया है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त निम्न-मध्य वर्गके लोगोंने किस प्रकार देशको तहस-नहस कर दिया था उसका एक परिवेष्टित चित्र मामु और प्रायश्चित में मिलता है। वे कर्मवादी थे। इसलिए सभी कृतियोंमें पुण्यका अभ्युदय और पापका पतन दिखाया है। उन्होंने अनेक गल्प भी लिखे हैं। 'गल्प स्वल्प' नामसे उनका दो भागोंमें संग्रह प्रकाशित हुआ है। इनमें वे सुधारवादी रूपमें प्रकट हुए हैं और अंग्रेजी शिक्षाके कुफलोंकी इनमें कड़ी समालोचना की गई है। किन्तु भाषा उग्र नहीं है। इसके लिए उन्होंने हास्य व्यंग एवं विद्रूपताका सहारा लिया है। किन्तु यह पाठकपर बहुत करुणापूर्ण छाप छोड़ जाता है। हास्य रसमें वे बेजोड़ हैं। उन्होंने अपना आत्मजीवन चरित भी लिखा था उसमें उन दिनोंके समाजकी अच्छी झांकी मिलती है। उन्होंने रामायण महाभारत [illegible] हरिवंश छान्दोग्य उपनिषद आदिका पद्यानुवाद किया था। 'बौद्धावतार' 'उत्कल भ्रमण' आदि काव्य लिखे थे। उनकी अनेक फुटकर कविताओं का संग्रह अवसर वासरे में किया गया है किन्तु पद्यकी अपेक्षा उनका गद्य अधिक बलिष्ठ है। वे इतने शक्तिशाली और प्रभावशाली थे कि कुछ लोग उन्हींके नामसे आधुनिक युगका नामकरण करते हैं। वे सब प्रकारसे उड़ीसाकी धरतीकी सन्तान थे। अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी भाषाको ग्रहण करते हुए भी जिन्होंने अपनी दृष्टि मिट्टीकी तरफ मोड़ी उनमें फकीर मोहन सेनापति थे।

इसी कालमें गंगाधर मेहेर नन्दकिशोर बल चिन्तामणि महान्ति लक्ष्मीकान्त महापात्र गोपालचन्द्र प्रहराज भिकारीचरण पट्टनायक गोपीनाथ नन्द आदि और कई प्रसिद्ध कवि और लेखक हुए। उनमेंसे गंगाधरकी चर्चा अलग होगी। नन्दकिशोर बल (ई १८७५–१९२८) पल्ली कवि आख्यासे परिचित हैं और उनकी कविताका उपजीव्य पल्ली है भी। उन्होंने पल्ली चित्र निर्झरणी जन्मभूमि प्रभातसंगीत सन्ध्या संगीत आदि अनेक पल्ली कविताएं लिखी हैं। उन्होंने शर्मिष्ठा एक नाटक और कनकलता एक उपन्यास भी लिखे हैं। उनके कुछ समालोचनात्मक लेख भी हैं। चिन्तामणि महान्ति अनेकानेक काव्यों उपन्यासों क्षुद्र गल्पों गीतों और कविताओंके लेखक हैं और चार विशाल खण्डोंमें उनका संग्रह प्रकाशित हुआ है। उड़िया जाति तथा भाषाके प्रति स्नेह

इनका मुख्य उपादान है। लक्ष्मीकान्त महापात्र हास्य रसके एक सफल शिल्पी थे। उनकी अनेक व्यंगात्मक नाटिकाएँ हास्य रसात्मक कविताएँ तथा व्यंगपूर्ण नाटक उपलब्ध हैं। 'कणा मामु' उनका एक अपूर्ण और अपूर्व उपन्यास है। 'लक्ष्मी बन्धासखी' उनकी एक नाटिका है। गोपालचन्द्र प्रहराज का व्यंग और विद्रूप अधिक तीव्र होता है। उनकी 'नाई महांति पाञ्जि' और 'मुँह सम्भाली' में इस प्रकारके कटु व्यंगोंका समावेश है। उन्होंने पहले लोककहानी और लोकोक्तियोंका संग्रह किया था। उनका भाषा-कोष भारतीय प्रान्तीय भाषाओंमें सबसे विशाल है। भिकारीचरण पट्टनायक प्रथमतः नाटककार हैं। उनके नाटक हैं—'कटक विजय' 'संसार चित्र' 'मुखौटा' आदि। उन्होंने 'गौर विजय माला' करण सामान्तकू रस भी लिखा था। पीछे उन्होंने कुटीर शिल्पके विकासका प्रारम्भ किया, और एक 'कुटीर शिल्प सिरीज़' निकाली। गोपीनाथ नन्द मुख्यतः प्रबंधकार थे। उन्होंने उड़िया भागवत दाण्डीय रामायण और सारला महाभारत आदिकी पाण्डित्यपूर्ण आलोचना लिखी। उन्होंने एक प्रकृति अभिधान और उड़िया भाषा तत्व पर उसी नामसे एक विचारक ग्रन्थ लिखा है। इसके अलावा उन्होंने कई संस्कृत नाटकों और काव्योंका अनुवाद भी किया था। प्रबन्धकारके रूपमें राधानाथ रायके पुत्र शशिभूषण राय और विश्वनाथकर भी प्रख्यात हैं।

इस प्रकार जब उड़िया साहित्यकी उन्नति हो रही थी तो आधुनिक युगके प्रथम पर्यायके अन्तिम कालमें बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें फिर कुछ परिवर्तन हुआ। राधानाथ मधुसूदन और फकीरमोहन समकालीन थे। राधानाथने प्रतीच्य सभ्यताका आवाहन किया था और मधुसूदन ने उस धारामें प्राच्य संस्कृतका योग किया था। फकीरमोहनने अंग्रेजी शासनका स्वागत करते हुए अंग्रेजी शिक्षाके कुफलोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया था। नन्दकिशोर पल्लीकी ओर लोगोंको ले गए थे। लेकिन वे सब जातीयतावादी कवि थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि धीरे-धीरे देशमें जातीयता जागृत होती गई। १९०३ ई में उत्कल सम्मिलनीकी प्रतिष्ठा १९०५ में बंग विच्छेद आन्दोलन और १९१२ में बिहार उड़ीसा प्रदेशके गठन द्वारा इस जातीय चेतनाका वेग और तीव्र हुआ। उड़ीसामें भी आशा सञ्चारित हुई कि उड़ीसा एक अलग प्रदेश हो सकता है। इस उग्र जातीयता बोधके साथ समाज सुधार और जनताकी सेवा का कार्यक्रम शामिल कर दिया गया। इसी उद्देश्यसे पुरी जिलेके सत्यवादी नामकी जगहमें एक जातीय वन विद्यालय स्थापित किया गया जिसके प्रतिष्ठाता गोपबन्धु दास थे। सत्यवादीके कर्मियोंने नया आदर्श लेकर साहित्य और नए युगकी सृष्टि की, जिसका नाम सत्यवादी युग पड़ गया। इनमें उड़ीसाका गौरव और जातीयता बोध इतना उग्र था कि उड़ीसाका किसी प्रकारका अपमान वे बर्दाश्त नहीं करते थे। यहाँ तक कि राधानाथने नन्दिकेश्वरी पार्वती आदि काव्योंमें उड़ीसाके इतिहासपर जो आक्षेप किया था उसका भी प्रतिवाद किया।

इस जातीय जागरण और सत्यवादी वन विद्यालयके मुख्य थे गोपबन्धु दास और उनके आह्वानसे उद्बुद्ध होकर नीलकण्ठदास गोदावरीश मिश्र कृपासिन्धु मिश्र लिंगराज मिश्र हरिहरदास प्रमुख इसमें शामिल हुए। कृपासिन्धु मिश्रने उड़ीसाका इतिहास कोणार्क और बाराबाटी उड़ीसाके प्राचीन गौरव प्रमापक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे। लिंगराज मिश्रने संस्कृत रामायणका अनुवाद किया। नीलकण्ठदासने टेनिसनकी प्रिन्सेस के आधारपर प्रणयिनी और इनोएक आर्डेनके आधारपर दास नायक लिखा था और खारवेल तथा कोणार्क दो काव्य लिखे थे जिनमें जातीयताका भाव अत्यन्त उग्र है। उन्होंने आर्य जीवन नामक एक प्रबन्ध ग्रन्थ और भगवद्गीताकी टीका अत्यन्त पाण्डित्य पूर्ण भुवनभमें लिखी थे। 'सभ्यता ओ संस्कृति' 'ओड़िया साहित्यका क्रम परिणाम' आदि उनकी और अनेक कृतियाँ हैं जो कुछ परवर्ती कालकी हैं। गोदावरीश मिश्र के दो नाटक हैं— पुरुषोत्तम देव और मुकुन्ददेव । उनकी भाषा कविताओंका संग्रह कलिका किसलय आलेखिका नामसे प्रकाशित हुए हैं। वे भाषा कवितामें सिद्ध हस्त थे। उनके अभागिनी लिबर्टिना चटान्तर आदि कई उपन्यास भी हैं। नेपोलियनकी एक जीवनी भी है। परवर्ती कालकी भी उनकी अनेक कृतियाँ हैं, जिनमें अर्द्ध शताब्दीर ओड़िशारे मो स्थान उनकी आत्म जीवनी उल्लेखनीय है।

इसी कालमें महात्मा गांधीने कांग्रेसका नेतृत्व कर १९२१ ई में असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। उड़ीसामें क्षेत्र प्रस्तुत था। सत्यवादी वन विद्यालयके कार्यकर्ताओंने मौका पाते ही उसमें सहयोग दिया और उन लोगोंको जेल जाना पड़ा। गोपबन्धु दास जब हजारी बाग जेलमें थे तो कारा कविता बन्दीर आत्मकथा अवकाश चिन्ता गो माहात्म्य धर्मपद आदिकी रचना की थी। धर्म पद में कोणार्कके शिल्पी विशु महाराणाके पुत्र धर्मपदका करुण जीवन चित्र दिया गया है।

सन् १९२१ तकके उड़िया साहित्यकी यही संक्षिप्त कहानी है और इसके बाद तो उड़िया साहित्यके इतिहासकी गति ही बदल जाती है।

[नोट—सन् १९२ से आज तकका उड़िया साहित्यका संक्षिप्त परिचय कवि-श्री माला—कालिन्दीचरण पाणिग्राही में दिया गया है।]

• • •

गंगाधर मेहेर

[कवि-परिचय]

गंगाधर मेहेर

• • •

सम्बलपुर जिलेके बरगढ़ तहसीलके पश्चिममें एक छोटी-सी जमींदारी है बरपाली। यहीं ९ अगस्त, १८६२ श्रावण पूर्णिमाको गंगाधर मेहेरका जन्म हुआ। मेहेर उनकी उपाधि है। जातिसे वे 'भुलिया' थे और भुलिया लोग प्रायः 'मेहेर' कहलाते हैं। वे लोग व्यवसायकी दृष्टिसे तांती या जुलाहे होते हैं। जुलाहेको उड़ियामें 'भुला' या भुलिया (जोलिया) कहा जाता है। कबीरदासजीको उड़िया साहित्यमें जोलिया कबीर कहा गया है। कबीर 'जुलिया' थे और मेहेर 'भुलिया'। मालूम पड़ता है कि 'भुलिया' और 'जुलिया' में कोई सम्बन्ध है। भुलिया लोग सम्बलपुर और आस-पासके अञ्चलमें रहते हैं। लेकिन उनकी भाषा उड़िया अथवा सम्बलपुरी बोली भी नहीं है छत्तीसगढ़ी या बरिया भी नहीं। उन लोगोंकी भाषाका अध्ययन नहीं हुआ है। लेकिन उसका छत्तीसगढ़ी या बरियासे और उत्तर या पश्चिमकी भाषासे सम्बन्ध है। उस जातिकी स्त्रियोंका पहिनावा भी कुछ अलग है। स्वभावसे वे लोग बड़े सरल और धर्मपरायण होते हैं।

गंगाधरके पूर्वज सम्बलपुर शहरके निवासी थे। उनके प्रपितामह बैष्णव मेहेर बरपालीमें थे। उनके पांच लड़के थे इसलिए उनका परिवार पांच भाईया परिवार कहलाता था और उनका मकान गुडि मन्दिर या भागवत मण्डपके निकट था,इसलिए गुडितलिया भी कहलाता है। तल का अर्थ उड़ियामें 'नीचे' होता है। गुडि (मन्दिर) या भागवत मण्डप साधारण बैठकखानेके रूपमें व्यवहृत होता है।

वहाँ साधु-सन्यासी लोग आकर आश्रय भी लेते हैं। वहाँ साधारणतया धर्म चर्चाएँ होती हैं। ऐसे ही एक परिवारमें गंगाधर मेहेर का जन्म हुआ था।

गंगाधर मेहेरके पितामह सदाशिव मेहेर सबमें बड़े थे। वस्त्र बुनना उनका मुख्य व्यवसाय था। वैद्यक और ज्योतिष विद्याका भी उन्हें ज्ञान था। सदाशिवके दो पुत्र थे और उनमेंसे ज्येष्ठ चैतन्य मेहेर गंगाधरके पिता थे। इनकी माताका नाम सेवती था।

गंगाधरकी शिक्षा ग्राम्य पाठशालामें शुरू हुई थी। उनके पिताकी एक चाटशाली पाठशाला थी जिसमें उड़िया भागवत पाठ एवं कुछ काव्य ग्रन्थोंके छन्द पढ़ाए जाते थे। किन्तु गंगाधरके जन्मसे पूर्व ही वह पाठशाला टूट चुकी थी। इसलिए अपने मकानके निकट एक अन्य जातिकी पाठशालामें उन्होंने सिद्धिरस्तु किया। उन दिनों पहले सिद्धिरस्तु या 'सिद्धिरस्तु' लिखाकर अ, आ इत्यादि वर्णमाला सिखाई जाती थी। किन्तु वहाँ 'रास पञ्चाध्यायी' के तीन-चार अध्याय हुए ही थे कि वह पाठशाला भी टूट गई। यह देखकर उनके पिता उन्हें नाम रत्नगीता पढ़ाने लगे। नाम रत्नगीता श्रीकृष्णदासके तत्त्वसीय वैष्णव सम्प्रदायके अनुसार एक तत्त्वपरक और शिक्षा मूलक ग्रन्थ है। शुरूमें उनके साथ पाड़ेके पाँच-सात लड़के भी पढ़ते थे। कुछ ही समयमें लड़कोंकी संख्या पच्चीस-तीस हो गई। और अब वह उनके पिताकी एक पाठशाला ही गई। वहाँ गंगाधर जगन्नाथदासकी 'भागवत' भक्तचरण दासके 'मथुरा मंगल' आदिके छन्द अच्छी तरहसे गा सकते थे। इस समय तक गंगाधरकी उम्र दस वर्ष की हो गई थी। इसी उम्रमें उनकी शादी भी हो गई। शादीमें कुछ कर्ज भी हो गया। उनके पिता कपड़ा बुननेमें इतना ध्यानमग्न रहते थे इसलिए बिना कुछ लिए उन्हें घरसे अलग कर दिया गया। कुछ दिनों तक उन लोगोंको बहुत कष्टसे गुजर-बसर करना पड़ा। बहुत कहासुनीके बाद उन्हें पैतृक सम्पत्तिमेंसे कुछ हिस्सा मिला जिससे कष्टका कुछ निवारण हुआ। इन झंझटोंमें पाठशाला टूट गई और पढ़ाईका क्रम बन्द ही गया।

उन दिनों बरपालीमें एक स्कूल था। उसमें उनकी नाम लिखानेकी इच्छा होती थी किन्तु किसीसे कह नहीं सकते थे। उसका कारण यह था कि उन दिनोंके कानूनके अनुसार यदि कोई लड़का गैरहाजिर रहे तो उसके पिताको बरगढ़ जाकर कठिन शारीरिक दण्ड भोगना पड़ता था। एक बार बरगढ़के तहसीलदार बरपाली आए थे। पाड़ेके (मुहल्लेके) किसी दुश्मनने ईर्ष्यावश गंगाधरके पिताका नाम तहसीलदारके पास लिखा दिया। इससे गंगाधरजी प्रसन्न ही हुए, उनकी अभिलाषा रास्ता कुछ तो साफ हो गया। दूसरे दिन चपरासी उनको बुला ले गया और वे *नियमित रूपसे कुछ दिन* बाक्स स्कूलमें जाने लगे। धर्मपुरमें मन्दिरमें चौमासेको पुराण-पाठ होता था। उन दिनों बलरामदासके रामायणका पाठ होता था। मगर उसको सुननेकी इच्छासे वे कुछ दिन स्कूलसे अनुपस्थित रहे

किन्तु पिता द्वारा डाँटे जाने पर वे फिरसे जाने लगे। कभी कभी स्कूलके शिक्षक पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका 'सीता वनवास' भी पढ़कर सुनाते थे। बालक गंगाधरको यह बड़ा अच्छा लगता था। इस तरह पाँचवा कक्षा तक उनकी शिक्षा गाँवमें हुई। जब परीक्षा देनेके लिए सम्बलपुर जानेका प्रश्न उठा तो उनके पिताने मत नहीं दी। क्योंकि निर्धन थे। महानदीमें बाढ़ की स्थिति नावसे ही पार करना पड़ता था। इसलिए उनके पिताको उन्हें भेजनेका साहस नहीं हुआ। इस प्रकार परीक्षा देनेसे वंचित होकर वे रो पड़े। फिर वे उसी कक्षामें पढ़ने लगे। करीब एक साल बाद शिक्षकने स्वयं ही छठी कक्षा भी प्रारम्भ कर दी जिसमें अन्य पाठ्य क्रमके साथ 'रघुवंश' भी पढ़ाया जाता था। किन्तु कुछ ही दिनोंके बाद शिक्षक-के छुट्टीपर चले जानेसे स्कूल पाँचवी कक्षा तक ही रह गया। छठी कक्षाके साथ-साथ गंगाधरकी पढ़ाई भी बन्द हो गई।

पढ़ाईके साथ-साथ वे घरपर कपड़ा बुननेके काममें पिताकी मदद भी करते थे। सारे विद्यार्थी जीवनमें कभी उनको एक अच्छा कपड़ा या कुर्ता पहननेको नहीं मिला।

पढ़ाई समाप्त होनेपर दिनभर वे घरमें काम किया करते थे लेकिन जब कभी थोड़ा बहुत समय मिलता तो उसे वे पढ़नेमें ही लगाते थे। माँगनेपर जो भी अच्छी पुस्तक उन्हें मिल जाती वे उसका अध्ययन करते थे। कभी-कभी तमस्सुक में कुछ पैसे भी मिल जाते थे जिसे वे किताब खरीदनेमें व्यय करते। धीरे-धीरे उन्होंने कपड़ा बुनने का काम अच्छी तरहसे सीख लिया और १९ सालकी अवस्थामें उनका विवाह हो गया। शादीके बाद उनके पिताने धीरे-धीरे परिवार-पोषण का भार भी उनपर छोड़ दिया तथा स्वयं बुनाईसे मुक्त हो साहूकारी और वैद्यकी करने लगे।

इस प्रकार उनका जीवन-क्रम चल रहा था कि बरपालीके स्कूलमें एक नए शिक्षक आए जिन्होंने गंगाधरको परीक्षा देनेके लिए प्रेरित किया। इसलिए फिर उन्होंने स्कूलमें अपना नाम लिखवा लिया तथा बीस सालकी उम्रमें सम्बलपुर जाकर इम्तहान दिया। चूँकि उनकी कवि मनोवृत्ति थी फलतः उन्हें सब विषयोंमें अच्छे अंक मिले पर गणितमें असफल रहे इसलिए मिडिल स्कूल सर्टिफिकेट न मिलकर देशी-पाठशाला पास सर्टिफिकेट ही मिला। इसी सार्टिफिकेटने उनके भावी जीवनकी गति निर्धारित की तथा इसीके बलपर भविष्यमें उन्हें नौकरी मिली।

गंगाधर अपने माता-पिताकी एक मात्र सन्तान थे इसलिए वे उनको नौकरीके लिए कहीं अन्यत्र नहीं जाने देना चाहते थे। जब बरपालीके जमींदार नृपराजसिंहको उनकी योग्यताका परिचय मिला तो उन्होंने वहीं उन्हें अपनी जमींदारीमें एक अमीन की नौकरी दे दी। उनकी तनख्वाह मात्र रुपए निर्धारित की गई, जो तत्कालीन अनुपातसे समझी जाती थी। परन्तु कुछ दिन काम करनेके बाद यह बन्द हो गई। वे दुकान

बुनकर होनेके कारण अपने पेशेसे ही गुजारा करने लगे लेकिन न्याय पथसे विचलित नहीं हुए। एक बार कनबाड़ नामक एक ग्राममें अनाधिकार प्रभुत्व जमानेके कारण बरपालीके जमींदार और मुख्तार के विरुद्ध एक मुकदमा दायर हुआ। मुख्तारके बाध्य करनेपर भी गंगाधरने साक्षी देनेके लिए साफ इनकार कर दिया। उनकी बात न मानकर मुख्तारने साक्षी करवा दी परन्तु उनकी सचाईकी गवाहीसे सबको जुर्माना हुआ। अपीलमें जमींदारको तो रिहाई मिली लेकिन बाकी सबका जुर्माना कायम रहा। इसपर जमींदार तो कुछ क्रुद्ध हुए किन्तु मुख्तार बिगड़े नहीं उनका भाव पूर्ववत् रहा। फिर जमींदारी में बन्दोबस्तका काम शुरू हुआ और मुख्तारने उनको जमीनका कार्य करनेके लिए बाध्य किया। उनकी सचाई देखकर बन्दोबस्त के बाद जमींदारने उनको खास मुहर्रिरके पदपर नियुक्त किया और धीरे धीरे खमार, बाजार आदि अनेक हिसाबोंका कार्य भार उन्हें सौंपा। उनकी तनखाह (७ से ८) ८ से १०) एवं १० से १५) तक क्रमशः बढ़ी। सन् १८९९ में बरपाली के पुलीसियम मुहर्रिरकी मृत्यु हो गई। जमींदारने गंगाधरजीके नामकी सिफारिश कर उस जगह उन्हें नियुक्त करवा दिया। क्रमशः २) से लेकर १५) तक वेतन वृद्धि हुई। इस नौकरीमें बरपालीमें करीब तीन साल रहे फिर तबादला होनेपर उन्हें सम्बलपुर बिजेपुर और पद्मपुर भी जाना पड़ा। सन् १९१७ में पेन्शन लेकर कुछ दिन पद्मपुरमें ही रहे। पद्मपुर(बुढ़ा सम्बर)के जमींदारने अपनी राजधानीके नजदीक डेंगापदर नामक एक गाँव उन्हें जागीरके रूपमें दिया था और उनकी स्मृति रखनेके लिए एक नव स्थापित गाँवका नाम गंगाधरपुर रखा था। गंगाधरजी पद्मपुरमें रहते समय जमींदारी कचहरीमें कौंसिलरका काम भी करते थे। किन्तु वहाँ रहना उनके मनको न भाता था वे अपनी जन्म-भूमि बरपाली लौट जाना चाहते थे। बरपालीके परवर्ती जमींदारके अनुरोधसे वे बरपाली लौट आए और वहीं खास-मुहर्रिर नियुक्त हो गए। लेकिन अन्याय अत्याचार और घूसखोरीसे कुछ क्षुब्ध होकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी। वे विद्रोही हो उठे। आत्म-मर्यादा उनकी दृष्टिमें बहुत बड़ी चीज थी। उन दिनोंके बामण्डाके साहित्य रसिक गुणग्राही राजा सच्चिदानन्द त्रिभुवन देवने प्रचुर धन और भूमि देनेका आश्वासन देकर उन्हें बामण्डामें रहनेके लिए निमन्त्रित किया। किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अब वे राजसेवाके अभिलाषी नहीं रह गए थे। भला अंग्रेजोंसे बड़ा राजा कौन था? जब उस राजाकी सेवामें वैराग्य पैदा हो उठा था तब दूसरे राजा की सेवा के लिए इच्छा क्यों करते? इन दिनों उनका मन बहुत अशान्त था। आदर्शवादी तो वे थे ही। अपनी भुलिया जाति की कुछ बुरी प्रथाओंको दूर करनेके लिए उन्होंने एक महासभाका संगठन किया और उसमें सुधारके कई प्रस्ताव पास कराए।

गंगाधरजीकी प्रथम पत्नीसे दो लड़के और लड़कियाँ हुईं। बड़े लड़केकी अल्पायुमें ही मृत्यु हो गई। फिर सन् १९१७ में पत्नी भी उन्हें छोड़कर चल बसी।

करीब एक साल बाद उनका दूसरा विवाह हुआ। वे अपने दूसरे लड़के भगवान मेहेरके लिए विशेष चिन्तित रहते थे क्योंकि वे उसे न तो उच्च शिक्षा ही दे सके और न कोई जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था ही कर सके थे। वे उसे बहुत प्यार करते थे और हमेशा अपने पास ही रखते थे। आजकल उनके एक पौत्र श्री विनोदचन्द्र मेहेर, बी० ए० इधर किसी अच्छी नौकरीपर हैं।

गंगाधरजीका जन्म एक धार्मिक परिवारमें हुआ था। बचपनमें ही उनकी पढ़ाई शुरू हुई थी रासपञ्चाध्यायी भागवत तथा बारहमास गीतासे। रासपञ्चाध्यायी भागवतका ही एक अंश है जिसमें गोपियोंकी भक्तिका एक श्रेष्ठ निदर्शन है। 'बारहमास गीता' श्रीलक्ष्मणदासकी लिखी हुई है और उसमें श्रीकृष्णकी बाल-लीला योगतत्त्व और कुछ उपदेशात्मक कथाएँ वर्णित हैं। उनकी शिक्षामें प्राचीनता और नवीनताका सम्मिश्रण था। उनकी शिक्षाका प्रारम्भ प्राचीन पद्धतिकी पाठशालामें हुआ तदनन्तर वे भर्ती हुए आधुनिक पद्धतिके स्कूलमें। सन् १८८२ में स्कूल छोड़नेके बाद प्राचीन रीति काव्य 'लावण्यवती' 'सुभद्रा परिणय' 'रसिकहारावली' 'वैदेहीश विलास' 'रस कल्लोल' ने गंगाधरके बालकवि हृदयको अत्यन्त आलोड़ित किया। उनके कवि-जीवनमें इस शिक्षाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार वे नूतन युगके राधानाथके ऐतिहासिक कालमें जीते हुए सन्धिकालके कवि भी कहे जा सकते हैं। उन्होंने एक पग आधुनिक युगमें रखा लेकिन प्राचीन युगसे पूर्णतया विलग न हुए। उनकी प्रारम्भिक कविताओंमें रीतिकालकी छाप स्पष्ट है जिसका होना स्वाभाविक भी है। उनकी शिक्षाके अनुसार उनके सामने दीनकृष्ण उपेन्द्र भञ्ज आदर्श थे। उनकी रीतिका अनुकरण कर उन्होंने 'रस रत्नाकर' लिखा। यह काव्य उषा अनिरुद्ध-परक है। किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि रीतिकाव्यके अनुसरणपर लिखित होने पर भी 'रस रत्नाकर' की भाषामें क्लिष्टता नहीं है भाषा सरल और मधुर है। जैसे —

रघुनाथ इन्दीवर नैन मनोहर।
रमा सुता हर जीवजीव-सुधाकर ॥
रतिपति जित छवि श्यामल सुन्दर।
रघुवीर शिरो वेनि भुजे चाप शर ॥
रक्षकुल संहारणे तव अवतार।
रसिक विनोदनकु करि लीलावर ॥
रस लभि यहुँ कवि रसकी विस्तार।

इस कविताको ह्रस्व-दीर्घ नियमसे पढ़ना चाहिए। कविने इसको प्रकाशित कर एक प्रति राधानाथ रायके पास भेजी। वे इसे पढ़कर बहुत खुश हुए और उनकी प्रतिभा देखकर उन्हें बहुत प्रोत्साहन दिया।

अब कवि गंगाधर द्वारा राधानाथ राय द्वारा प्रदर्शित मार्गमें चलने लगे। उन्होंने रीतिमार्ग और संस्कृत छन्दोंको छोड़कर सरल ओड़िया छन्द अपनाए। उन्होंने प्रारम्भ विक्रमोर्वशीको बंगला भी में बदल दिया और छोटी-सी अमरचरितिका छोड़कर फिरसे आत्मसात्य किया। यह और भी हृदयग्राही हुआ। अतः यह प्रगट है कि गंगाधरने भाषाकी शैली बदल दी उसे और अधिक सरस बना दिया तथा उसमें नूतन भावोंका समावेश किया। उनपर राधानाथ रायके काव्योंका काफी प्रभाव पड़ा। उनका प्रथम काव्य है इन्दुमती। इन्दुमती पर राधानाथकी उषा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। उषा में वसन्तके उषाके साथ कठोर दौड़का परिणाम उत्तीर्ण होनेके बाद विवाह-वेदीमें पाणिग्रहण होते ही दोनोंकी मृत्यु होती है। सम्भोग शृंगारस बदल और विप्रलम्भ आता है। लेकिन उषा और वसन्तकी दौड़ भारतीय रुचिके विरुद्ध है यह Atlantas race पर आधारित है। गंगाधरको इसकी रस योजना तो अच्छी लगी लेकिन कथावस्तु शायद नहीं जँची। इसलिए शिल्पी गंगाधरने इन्दुमतीकी कथा चुनी। यह कथावस्तु कालिदासके रघुवंश से ली गई है; परन्तु यह अनुवाद नहीं है। कवि आत्मस्तव में कहते हैं —

सशरीर प्राण ये करे प्रदान
तांकु वर्णिवार भाषा
मिळे कीपारावि न मिळे त वाणि
ताहिं कर्याहुँ मोर आशा ?
तथापि न कहि हुए नाहिं रहि
मनकु या दिये मत
तेहिपाई दुइ चारि कथा कहि
कृतार्थ हेलि केवल

[जिस सर्व शक्तिमानने मानवीय प्राणीको प्रदान किया है उसकी वन्दना किन भाषाओं की जाए! यह वाक्य सरस्वती भी न जानती होगी—यहाँ मेरी क्या गणना? फिर भी इस विषयमें अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता! इसलिए मैं दो-चार बात कहकर कृतार्थ ही हुआ हूँ।]

इन्दुमती काव्य शुरू होता है विदर्भ नगरका मनोहर वर्णनसे। स्वयम्वरसभामें प्रवेश इन्दुमतीका प्रवेश राजाओंकी अवस्था प्रभृतिका वर्णन अपने ढंगसे किया गया है।

गंगाधरने राजाओंकी शृंगार चेष्टाओंका विशद वर्णन छोड़ दिया है और परिणयस्थ राजाओंकी अवस्थाका वर्णन करते हुए नई नई उपमाओंका संयोजन किया

है। उनकी उपमाओंमें कुछ पारम्परिक हैं और कुछ उनकी अपनी हैं। उन्होंने
अपने परिवेशमें कुछ उपमाएँ आहरण कर उनका प्रयास किया है।

इन्दुमती पढ़कर भी राधानाथ रायने उनकी खूब प्रशंसा की। जिससे उनको
बहुत प्रोत्साहन मिला। इसके बाद उन्होंने उत्कल लक्ष्मी प्रारम्भ किया
उत्कल लक्ष्मी में भी राधानाथीय विचार धारा प्रतिपादित है। राधानाथके प्रति
अपनी प्रशंसाके प्रति प्रशंसा है।

राधानाथ रायके कार्यांम पुरी (कटार गौरी) चन्द्रभागा नाटक (नन्दि
केशरी) दामोदर (उषा) और आमपासके कुछ पहचाना का स्थान दिया गया है
ममाहरने पश्चिमी सम्बन्धके सम्बलपुर कालागीर आदि आदिको भी स्थान दिया है
इस काव्यके प्रथम अंशमें उत्कलका गौरव गान किया गया है। उसके बाद चन्द्र और
रोहिणी उत्कलके मयूर मन्दमें रामचन्द्र भञ्ज और प्रभा ('उत्कल प्रभा' मयू
भञ्जम प्रकाशित एक मासिक पत्रिका)के रूपमें पैदा होते हैं। उनके पहले कुन्तलि
कुसुम बकके रूपमें और शुक राधानाथके रूपमें पैदा हुए। भक्त के मध्यम निर्जी
प्राणी भी सजीव हो उठे हैं। ये सब उत्कल लक्ष्मीकी पूजा करते हैं और पूजाके
लिए आते हैं। वे कहते हैं—

बहु एक मिला मिहिकाकु सहु
हेउथिलि तरवर,
बड़ कहि देला नयन युगल
आनन्द लोतक झर,
से झरे प्लावित हेला वक्षस्थल
प्राण हेला पुलकित
मने हेला तहिँ नयु माठ थाए
होइब अति निमज्जित।

मधुके उत्कल लक्ष्मी मयूरी घनी थी बादमें इन मन्दूर्ण प्रकाशित
किया गया था आवरक उपलब्ध है। इसका रूपमें सरलता तथा माधुर्य है स्प
सरलता भाव चातुर्य युक्त है।

इसमें अधिक उत्साहित होकर आप उन्होंने कीचक वध नामक काव्य लिखा
इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है। 'इन्दुमती' के समान स्मर
भी पुराणको पूर्ण रूप दिया गया है। और इसके मालव मालिकाएँ और अन्य पात
सम्पूर्ण भारतीय हैं। कीचक वध की रचनाके समय पद्माकरजी विजयपुरमें थे। वहाँ
जमींदार सदर्थिक रूपसिया समप्राण सरल और आधिपत्यसम थे। किन्तु उनके
भाई अनिरुद्ध महासिया दुराचारा और सम्पन्न थे। ऐसी परिस्थितियोंमें मुग्ध होकर

उन्होंने 'कीचक वध' की रचना की। इसमें पाप-पुण्य धर्म-अधर्म का द्वन्द्व है तथा अन्तमें धर्मकी अधर्मपर और पुण्यकी पापपर विजय दिखाई गई है।

इस ग्रन्थमें शृंगार, रौद्र वीर, भयानक हास्य आदि रसोंका समावेश किया गया है। इसमें बसन्त वर्णन संध्याका वर्णन तथा सुन्दरियोंका मात्रा वर्णन आदि अत्यन्त मनोरम हुआ है। सन् १९०३ ई में 'कीचक वध' की रचना की गई थी। इसके बाद बहुत दिनों तक वे चुप्पी लगा गए। 'कीचक वध' के मुखबन्धमें राधानाथ लिखते हैं — गंगाधरका दुर्भाग्य कि वे उड़ीसामें पैदा हुए हैं। अनन्त सौन्दर्यों वासिनी प्रकृति देवी और प्रकृति देवीका यह पुरोहित जो बाल्यकालमें व्यास और वाल्मीकिका चिर सहचर था। उदरपूर्तिकी कठिन समस्याका समाधान इनके जीवनका प्रधान व्यवसाय बन गया था।" इससे मालूम होता है कि दारिद्र्य उनकी प्रतिभा विकासकी एक प्रधान रुकावट थी। सन् १९०८ ई में राधानाथकी मृत्यु हुई। तब तक उन्होंने कुछ नहीं किया था। ई सन् १९०९ की राधानाथकी शोक-सभामें श्री ब्रजमोहन पण्डा उपस्थित थे और वे उस परिवेशसे अभिभूत हो गए। उन्होंने गंगाधरके पास चिट्ठी लिखनेका निश्चय किया और उनके साथ सम्पर्क स्थापित किया। यह गंगाधरके कवि जीवनमें एक महत्वपूर्ण घटना है। दारिद्र्य जनित पारिवारिक अशान्ति और पृष्ठपोषकताके एकान्त अभावसे स्तब्ध और नीरव गंगाधरको उन्होंने मुखर किया। उनकी निश्चल लेखनी चञ्चल हुई उनकी समस्त कृतियोंके प्रकाशनका भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। इसका फल हुआ 'अयोध्या दृश्य'।

अयोध्या दृश्य में तीन सर्ग या दृश्य हैं —

(१) रामचन्द्रका अभिषेक प्रस्ताव और वनवास।

(२) पुत्र विरहमें कौशल्याकी अवस्था और

(३) वनवाससे प्रत्यावर्तनके साथ भरत मिलन और राज्याभिषेक।

इसके सब दृश्य करुण रसपूर्ण हैं। द्वितीय दृश्यमें पुत्र-विरहित मातृ-हृदयका एक अच्छा वात्सल्य रसपूर्ण चित्र दिया गया है।

इसमें गंगाधरके अपने हृदयके भाव मर्माहित हुए हैं। दारिद्र्यके कारण उन्हें दैहिक सुख नहीं मिला और साहित्य-सेवाके अभावसे वे मानसिक सुख भी नहीं प्राप्त कर सके। ऐसी परिस्थितिमें वे ऊब गए। वे साहित्य-सेवा छोड़ देना चाहते थे किन्तु ब्रजमोहन पण्डाके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके। इसलिए अयोध्या दृश्य'के बाद 'पद्मिनी' काव्यमें हाथ लगाया। पत्रावली से मालूम होता है कि ब्रजमोहन पण्डा ने उनके पास राजस्थानका इतिहास भेजा था।

इस बार पुराण या संस्कृत-साहित्य छोड़कर इतिहासके कथावस्तुकी ओर उनकी दृष्टि गई किन्तु सच कहा जाए तो 'कीचक वध' और 'पद्मिनी' काव्यमें शिल्पगत अन्तर अधिक नहीं है यद्यपि कथागत अन्तर काफी है। निश्चय ही

'कीचक वध' प्रतिभाकी विकसित अवस्था की देन है और 'पद्मिनी' निष्क्रिय-निष्पन्न अवस्था की।

पद्मिनी काव्यमें दैन्य अभिमान और विवशताकी ओर कुछ संकेत है।

'कीचक-वध' का कीचक यहाँ अलाउद्दीन है, द्रौपदी है पद्मिनी और पाण्डव है भीम। इसमें भी धर्म और अधर्मका द्वन्द्व है। कीचककी अनेकों चेष्टाओं पर भी पतिव्रता और धर्मपरायणा पद्मिनी अपने प्रणपर स्थिर रहती है। काव्य अपूर्ण है, किन्तु परिणति स्पष्ट है।

अलाउद्दीनके बारेमें लेखनी और मनको उचित स्पष्ट प्रयुक्त हुई है। उनके परवर्ती काव्योंमें इस शैलीका और अधिक विकास हुआ है। गंगाधरके राजद्रोही मनने एक अच्छा चित्र उपस्थित किया है। हम देखते हैं कि उनकी प्रतिभा धीरे-धीरे उद्भासित हो रही थी। वे कहते हैं— "मलेकर पारति के प्रतिभा शक्ति अल्पता न पारे मइ बलइले मति।" इसलिए 'पद्मिनी' की सृष्टिमें उनका मन नहीं भरा और उन्होंने उसे अधूरा छोड़ दिया। उन्होंने और बड़ी सृष्टिकी कल्पना की और उनकी दृष्टि कालिदासकी ओर गई। कालिदासकी श्रेष्ठ कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, उन्होंने उसे हाथमें लिया। एक प्रतिभाशाली व्यक्ति ही कालिदासकी कीर्ति पर हाथ रखनेका साहस कर सकता है। यह सिर्फ अनुवाद नहीं है।

कालिदासके सम्पूर्ण काव्य-सौन्दर्यका समावेश इसमें नहीं किया गया है। उन्होंने और भी कहा है कि नाटक में नायक-नायिकाओंके हृदयकी प्रशस्त चिन्ताएँ विस्तृत रूपसे चित्रित नहीं हो पातीं, इसीको दृष्टिमें रखकर उसके उड़िया काव्य रूपमें लेखककी स्वतन्त्रता प्रयुक्त हुई है, अर्थात् कविके मतसे नाटकके कारण कालिदास जिन चित्रोंका विस्तृत विकास नहीं कर सके, उन्होंने काव्य होनेके कारण उसका वृहद् विस्तार किया है। वह क्या है? वह है 'प्रणय'। गंगाधरने अपने काव्यका नाम रखा है 'प्रणय वल्लरी' और सर्गोंका नाम रखा है— 'प्रणय अंकुर', 'प्रणय पल्लव' 'प्रणय प्रसून' 'प्रणय सौरभ' 'पुष्पे कीट' 'प्रणय फलें' 'प्रणय छाया'। शकुन्तला नाटकके अन्य अंशोंकी अपेक्षा प्रणयका अधिक विस्तार किया गया है। इसमें कवि मध्ययुगीय परम्पराके अनुयायी हो गए हैं। मन विवेक की उक्ति-प्रत्युक्ति भी है। मध्य स्वप्नका भी प्रयोग किया गया है किन्तु इन सबमें वे अत्यन्त संयत हैं।

द्वितीय सर्गमें नवीन प्रणयांकुर राजाके मन और विवेकका द्वन्द्व और शकुन्तलाकी मानसिक अवस्थाका विश्लेषण किया गया है जो तृतीय सर्गमें 'प्रणय परिवेश' की सृष्टि करनेमें सहायक होता है। इसमें राजा शकुन्तला और सखियोंका मिलन आलाप उक्तोक्ति आदि अत्यन्त हृदयग्राही हुए हैं।

जिसमें यथावसर अपने कौशल से उक्तियोंको भी इसमें दे आए हैं। दुष्यन्त राक्षसोंका आक्रमण दूर करनेके लिए स्वर्गमें गए थे। इस आक्रमणका कारण था कि देव-कन्याओंने राक्षस कन्याका अपमान किया था। एक दिन अलकापुरीके समुद्र-तट पर नीलाचलके नीचे शान्ति श्रद्धा दया क्षमा भक्ति आदि देवकन्याएँ घूमती थीं राक्षसराज कन्या हिंसा वहाँ आई और उनमें झगड़ा हुआ। यह भी एक सुन्दर चित्र है।

दुष्यन्त और शकुन्तलाका पुनर्मिलनका दृश्य भी बड़ा चमत्कारी और नाटकीय हुआ है। इसमें प्रकृति-वर्णन भी अपने ढंगका है।

प्रणय वल्लरी में प्रणय या सम्भोग शृंगारका चित्र दिया गया है इसके बाद कवि की दृष्टि गई विप्रलम्भ शृंगार या करुण रसकी ओर। 'उत्तरराम चरित' में भवभूतिने कहा है —

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।

इस रसके उत्कृष्टतम आलम्बन हैं निर्वासनके बाद राम और सीता। इसलिए कविका ध्यान उनकी ओर गया और 'तपस्विनी' की रचना की। 'तपस्विनी' सीता ही है। ऐसा लगता है कि इस नामकरणमें उनपर कालिदासका प्रभाव पड़ा था। कालिदासने कहा है —

नृपस्य वर्णाश्रम पालनम् यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥

नरपतिका वर्णाश्रम धर्म पालन ही मनु प्रणीत धर्म है। इसलिए निर्वासित होनेपर मुझे अन्य तपस्वियोंके समान देखना चाहिए। किन्तु कालिदासकी अपेक्षा 'तपस्विनी' में भवभूतिका अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। भवभूति सीताके सम्बन्धमें कहते हैं—

परिपाण्डु दुर्बल कपोल सुन्दरम्
दधती विलोल कबरीक माननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।

पाण्डुर और दुर्बल कपोलसे सुन्दर आननपर विलोल कबरी पड़ी थी। इस रूपमें जानकी करुण रसकी मूर्ति या शरीरधारी-विरह व्यथा-सी वनमें आती है। 'तपस्विनी' काव्य यहींसे शुरू होता है। लक्ष्मण द्वारा सीताका विसर्जन इत्यादि आदि पूर्व अंश छोड़ दिया गया है। केवल जानकी ही नहीं रामका भी करुण रस पुट पाकके समान गाम्भीर्यके कारण अप्रकटित है और घनीभूत व्यथा अन्तर्गूढ़ है। जानकीके इस करुण रसका रूप देना कवि का उद्देश्य है। यह करुण रस और सघन हुआ गया है। राम और सीता दोनोंके मानसिक द्वन्द्व प्रसंगोंके द्वारा पति और राजा रामके मनमें यथार्थ और आदर्शके संघर्षमें आदर्शकी विजय हुई है। वे कहते हैं —

प्रकृतिर शान्ति-यज्ञे नृपति
सुतारे स्वभावे बलि।
गृह धर्मदामे बद्ध निज कामे
पारेन पारह चलि।

[प्रजाके शान्ति यज्ञमें स्वभावतः राजाको सुतकी बलि देनी पड़ती है। गृह धर्म रज्जुसे बद्ध राजा अपने कर्तव्य कर्मसे एक कदम भी नहीं चल सकता।]

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सीताके प्रति रामका प्रेम घट गया। अन्तर्मुख मन व्यथ राम कहते हैं —

नाहि सिता मरे, हृद-प्रेम सरे
मो प्रिया कमल कलि।
परिमलि फुटि मकरन्द लुटि,
दशमति मन अलि।
नयन-युगल चाहिछे विकल,
होइ छाड़_ मत जल।
धुलि गले सर, कमलिनी मोर
होइ हम टल टल।
बांध तु पथर, बंध होई कर,
यह मेघ जल जाली।
नासिका पवन न बहितु घन
कंपित प्राण सजनि।

[राम रो भी नहीं पाते। रोनेसे नयन मार्गसे जल निष्कासित हो जाएगा सरोवर सूख जाएगा और कमलिनी सीता सूख जाएगी। राम हृदयको पत्थर कर मेघजल नालीको रोकते हैं। और जोरसे निश्वास भी नहीं लेते ताकि कमलिनी सीता कम्पित न हो जाए।]

रामचन्द्रके इस प्रेम को सीता जानती थी इसलिए कालिदासने जो कहा है —

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥

यह कवि गंगाधरकी कल्पनाके बाहर है। गंगाधरकी सीता रामको दोषी नहीं कह सकती। इसलिए तपस्विनी की भूमिकामें गंगाधर कहते हैं—उन्होंने (सीताके) निर्वासनको अपना प्रारब्ध-दोष कहकर किस प्रकार पति भक्ति की महत्ता और उच्चताका परिचय दिया है— अवमानकी पति-हित-साधिनी-

तपस्याम परिणित कर तपस्विनीके रूपमें किस प्रकार दिन व्यतीत किए, उसे प्रकट करना ही इस पुस्तक का प्रधान उद्देश्य है।

प्रणयिनी सीता और पत्नी सीताके मनमें द्वन्द्व है पत्नीत्व आदर्श की विजय हुई है। प्रणयिनी सीता निर्वासिता होनेपर शरीर त्यागना चाहती है परन्तु पत्नी सीताके ऊपर रघुकुल की वंश-रक्षा का भार है इसीलिए वे उससे विरत होती है। यहाँ प्रणयिनी सीता के अतीत जीवनका एक विशद चित्र खींचा गया है जिससे करुण रस और भी मूर्तिमन्त हो उठा है। किन्तु वे कभी रामचन्द्रको कोसती नहीं। निर्वासनका कारण वे अपने भाग्य या अपने कर्म को ही समझती है।

प्रकृति प्रेमी कवि गंगाधरने समस्त महानदी गोदावरी आदि नदियों वसन्त ग्रीष्म वर्षा आदि ऋतुओं तथा उषा सन्ध्या आदि कालों और अनुकम्पा आदि भावों को भी सजीव मूर्तिमान् और मनुष्योंके सुख-दुःखका साथी समझा है। प्रकृति-चित्रणमें वे अत्यन्त निपुण है।

तपस्विनी काव्यम ग्यारह सर्ग है और प्रत्येक सर्ग अपनेमें पूर्ण है। प्रत्येक सर्ग एक-एक खण्डकाव्य कहा जा सकता है। इसम खण्ड सौन्दर्य होते हुए भी अखण्ड सौन्दर्य है यह खण्ड काव्यात्मक अखण्ड काव्य है।

इन काव्योंके अलावा गंगाधरने अनेक फुटकल कविताएँ भी लिखी है। इनमें उनके जीवन दर्शन भक्तिभाव ईश्वर-प्रेम देश-प्रेम जातिप्रेम आदिकी स्पष्ट सूचना मिलती है। इन कविताओंका समूह कविता कल्लोल 'अर्घ्यथाली' कविता माला कृषक संगीत आदिमें किया गया है कुछ इनमें शामिल नही है।

कविता कल्लोक के वेश्यास में देश-प्रेम प्रधान भाव है। सुन्दरगड जिलेके पाच-कोड़की नदियोंके संगम-स्थलपर वेदव्यासका पर्यावास हुआ था ऐसा विश्वास है। इसलिए उस जगहका नाम वेदव्यास है और वहाँ एक मेला लगता है। इसकी चन्द्र-रचनी कख कग घघ घघ ड ड क्रममें लिखित दशपरीस सनिटोंमें लिखी गई है।

इसकी सोमनाथ विजय भी इसी प्रकारके सनिटोंमें लिखी गई है। इसके अतिरिक्त वसन्त बासर और वर्षा चित्र समाविष्ट है। उनके कुछ चतुर्दशपदी सनेट क ख क ख घ घ ग घ ड च ड च छ छ नियममें लिखी गई है।

अर्घ्य थाली में उनके जीवन-दर्शन और ईश्वर-प्रेमकी अच्छी झाँकी मिलती है। उनकी प्रथम कविता है भक्ति।

गंगाधरके बाल्य जीवनमें जो भक्ति रूपी बीजारोपण हुआ था इसमें उसका सम्पूर्ण विकास हुआ है। अमृतमय मधुमय में इसी प्रकार का भाव है। जीवन जिस प्रकार अमृतमय है उसी प्रकार मधुमय भी। मधुमय में वे कहते है —

विश्व देख मधुमय रे जीवन,
विश्व देख मधुमय

मधुर शरण कविता हरण
तो पाप मरण ममरे जीवन ।
जननीर स्नेह आधार प्रणय
बन्धु सखा लाभ ।
जनक आदर एक एक सर,
तीव्र देबु शान्ति तापरे जीवन ।

[विश्व मधुमय है। मधुका भरना पाप-मरणका भय दूर करता है। जननीका स्नेह मायाका प्रणय पुत्र धन और बन्धु जनोंका सख्य लाभ पिताका आदर, प्रत्येक एक-एक भरते हैं और व ताप दूर कर देते हैं।]

इसमें मधु वाता वै आनायसे मधु क्षरन्ति सिन्धवः का मधु उदात्त स्वर है, पर वे कान्ता कन्ये पुत्र का नहीं। उनका देश-प्रेम भी आदर्श कोटिका है वे उत्कल भारती में कहते हैं —

नख बढ़िगिले कर कर्तन,
रञ्जिबाकु तहिं अलता रंग ।
नाक बढ़िगिले ताकु छेदन
हेब नाहिं कि मो सौष्ठव भंग ।

[नाखून बढ़ गया है तो उसे काटकर अलक्तासे रंग देना चाहिए। नाक बढ़ गई है तो उसे काट देनेसे क्या मेरा सौष्ठव भंग नहीं होगा ?]

आज भी यह बात सच्ची है। आज भाषागत एकताका धुंआ उठा है। किन्तु उन्होंने 'मातृभूमि' कविता में कहा है कि बालक अपने घरसे दूसरोंके घर, घरसे पाड़ा पाड़ेसे ग्राम और ग्रामसे ग्रामान्तर जाता है—इस प्रकार उसका ज्ञान बढ़ता ही जाता है —

पहिलटि ग्रामकथा राज्यकथा
देशकथा विश्वकथा
मानव जीवने प्रतीत हेवार
वर्णित हुए सर्वथा ।
मातृ-भूमि मातृ-भाषा रे ममता
या हृदे जनीम नाहिं,
ताकु येबे ज्ञानि गणरे गणिबा
अज्ञान रहिबे काहिं ।

ग्रामसे राज्य राज्यसे देश देशसे विश्व-बोध मानव जीवनमें उत्पन्न होता है। मातृभूमि और मातृभाषाके प्रति जिसमें ममता पैदा नहीं हुई है उसे यदि ज्ञानियोंमें गिना जाए तो अज्ञानी कहाँ रहेंगे ? उनका देश प्रेम इस प्रकार का था।

सामाजिक अत्याचारोंको देखकर भी उनका हृदय रो उठता था। ब्रिटिश शासन कालमें शासकोंको धर्मावतार कहा जाता था। उनको लक्ष्य कर वे कहते हैं —

मन धार व्यस्त सदा पर स्वत्वहरणे
धन धार विदलित धनिका चरणे।
जीवन था त्रस्त-त्रस्त लोकातुर भार,
तातु मध्य बोलि वाञ्छि धर्म अवतार।

इन पंक्तियोंमें शासकोंका जो चित्र दिया गया है वह आज भी सत्य है। इसी सुरमें उन्होंने भारती भावना गाई है। इसमें जीवेन्द्रकी स्तुति है किन्तु श्लिष्ट अर्थमें पराधीन भारतकी अंग्रेजोंके प्रति उक्ति है।

वे सुधारक मनोवृत्तिके थे तथा पञ्चायत शासनके पक्षपाती। इसी मनोवृत्तिको लेकर उन्होंने कृषक संगीत लिखा था। इसकी कल्पना एक अभूतपूर्व कल्पना है। वर्जिल की जार्जिक्स कविताओंमें इस प्रकारकी कल्पना पाई जाती है। कृषक संगीतमें अन्न की महिमा कृषिका गौरव कृषककी आत्मकथा भूमि विभाग और विभिन्न शस्योंकी कृषि वर्णित हैं। इसमें प्रयुक्त छन्द सम्बलपुर अञ्चलमें प्रचलित हुलिया गीत या किसान गीत से लिया गया है। इसमें सहकारी भावना और विश्व कल्याण भावनाके साथ-साथ कवित्व भी है। अन्न की महिमाका बखान करते हुए वे कहते हैं —

अन्न खाई तत्तिले जीवन करे हंस
अन्न खाले कोकिल गान करि ध्वंस।
अन्न खाई जेतरे खेलइ कल्याण,
यहि देश आनन्द आमोद ताहि रे
अति अन्न हे!!

कृषिका गौरव' व सभ्यताके विकासमें कृषि की देन का संक्षिप्त विवरण दिया गया है और कहा गया है —

कृषि तो वेदरे कृषि तो पुराण।
कृषि बिना रहि न पारइ पराण।
कृषि जेनि नृपति कृषि जेनि लक्ष्य
कृषि बले आयु श्री सम्पद सकल
हुए लभ्य हे!!

कृषक की आत्मकथा में एक आदर्श कृषक का जीवन दिया गया है। कृषक कहता है—

> काम मोर खेतरे खेतरे विश्राम
> विश्रामिले एकान्ते गाये हरिनाम।
> गान मोर उठिबे खेत पक्षी गाने
> मिशाई मिशाले मो गान शुणन्ते
> एक ध्यान हे।।"
> मोहो गान धरिले उठे ताङ्क गान
> मधुमरी उठान्ति ए धाहार तान
> डाले डाले विहरि खेलि बुलि मोते,
> ईश्वरङ्क विचित्र महिमा स्मरान्ति
> मोर हृदय रे।।

इस प्रकार गंगाधर अपनी कविताओंकी अमूल्य थाती सौंपकर सन् १९१४ में चैत्र अमावस्याके दिन परलोक सिधारे। वे पूर्णिमाके दिन इस लोकमें आए थे और अमावस्याके दिन यहाँसे सदाके लिए चले गए।

• • •

गंगाधर मेहेर

[काव्य-सञ्चयन]

१, ग्राममे प्रभात

चतुर्थ सर्ग

झंपलें सहसा उषा विकच-राजिवमुखा
जानकी-वसन-सुधा-हृदये बहि,
करपल्लवे मोहार मुक्ता धरि उपहार
स्तोक बास-बाहार प्रांगणे रहि,
कलकण्ठ-कण्ठे कहिला,
“परसन विभ सती, राति पाहिला।” ॥१॥

अरुण कषाय वास, कुसुम कान्ति विकाश,
प्रशान्त रूप, चिरवास विभान्ति मने,
केहें योगेश्वरी भासि मधुर भावे आश्वासि
आकुलन्ति पुष्पराशि-उपवनने,
देवा पाई नव जीवन
स्वर्गु कि मोल्हाइलन्ति मर्त्यभुवन ॥२॥

समीर संगीत गाए, भ्रमर वीणा बजाए
सुरभि भसमे धाए उषा निदेशे,
कुम्भदुमा होइ भाट आरम्भिला स्तव पाठ
कलिंग सहसा पाठ मगध देने,
ललित मधुरे कहिला,
“उठ सती राज्य राणि, राति पाहिला।” ॥३॥

१ आश्रममें प्रभात

चतुर्थ सर्ग

प्रस्फुटित कमलके समान नयनवाली मंगलमयी उषा जानकीके दर्शनकी अभिलाषा लेकर आई और करमें शबनम रूपी मोतियोंकी माला लेकर सीताके प्रांगणमें खड़ी होकर मधुर वाणीसे बोली—"हे देवि! भोर हो गया है उठो दर्शन दो।" ॥१॥

सूर्यकी अरुण किरणोंके साथ गेरुआ वस्त्र पहनकर उषा आई है, मानो सुन्दर गम्भीर रूप धारणकर कोई योगेश्वरी ही सीताका दुख-दर्द दूर करनेके लिए स्वर्गसे अवतरित हुई है। वह आश्वासन देती हुई नवजीवन प्रदान करनेके लिए सीताको बुलाती है—॥२॥

उषाका आदेश पाकर समीर गीत गाने लगा भ्रमर वीणा बजाने लगे, सुरभि नाचने लगी। महोत्सा भाटका रूप धारणकर स्तवन पाठ करने लगा। श्रेष्ठ भाटके रूपमें कलिंग (श्यामा) आया और ललित कण्ठसे बोला— हे राजरानी! रात बीत गई, उठो। ॥३॥

मुनि-मुखे वेद-स्वन पूत कला श्यामवन
उठिला भेदि गगन उच्च ओंकार
वैकुण्ठे वेद सुपति समस्त श्रुतिकि गति
विहिला कि सरस्वती वीणा झंकार,
वेळुवेळ वन उज्ज्वळ,
मन बळे येन्हे बढ़ि आसिला बळ ॥४॥

एकाळे ब्रह्मचारिणी अनुकम्पा तपस्विनी
आसि जनकनन्दिनी पाशे गम्भीरे
बोइले, उठ वैदेहि, उषा सुकुमारदेही
आसिछि वर्षन वेद तोय शिशिरे,
तमसा रहिछि अनाईं
कोळ करि वरे सुख लभिबा पाईं ॥५॥

पद्मिनी-हृद-शिशिर बिन्दुरे यथा रविकर
प्रतिबिम्ब परि, वीर राम मूरति
शोकजर्जरित चित्त फळके करि चित्रित
हेल आसनु उत्थित जानकी सती,
नमि अनुकम्पा पदरे
वन्दिले अपार पद सविनयरे ॥६॥

बोइले ताकु प्रशंसि, "तुम्भे तिमिर विध्वंसि
रवि-आगमन-शंसि तुम संसारे,
तुम्भ कोमळ चरण करे ज्योति आहरण
ताँहु पारुछि जनम शुभ आगारे,
शुभ सउरभ रसिके,
शुभ सम्भाविनी तुम रघुवंशिके। ॥७॥

मुनिके मुखसे निःसृत वेद-मन्त्रकी मधुर ध्वनिसे सघन श्याम कानन गूँज उठा। ओंकारकी ध्वनि आकाशको भेदती हुई अन्तरिक्षकी ओर अग्रसर हो वैकुण्ठके निवासियोंको आनन्दित कर पातालकी ओर अग्रसर हुई मानो वह सरस्वतीकी वीणाकी झंकार ही हो। मन्त्रके प्रभावसे जिस प्रकार तेज प्रकाशित होता है उसी प्रकार सूर्यके तेजसे वन प्रकाशमान हुआ। ॥४॥

इसी समय तपस्विनी अनुकम्पाने जनक-नन्दिनी जानकीके पास आकर कहा—"हे वैदेही! सुकुमारी उषा तुम्हारे द्वारपर खड़ी है उठो दर्शन दो। तुमको भी गोदमें लेकर सतोष पानेके लिए रास्ता देख रही है।" ॥५॥

कमलपर पड़ी हुई शबनमकी बूँदों पर जैसे प्रखर किरणें प्रतिबिम्बित होती हैं उसी प्रकार वीर रामचन्द्रकी मूर्तिको शोकाकुल हृदय रूपी पटपर चित्रित कर सती जानकी आसनसे उठी। अनुकम्पाको प्रणाम करके विनयके साथ उषाकी चरण-वन्दना की ॥६॥

सीताने उषाकी प्रशंसा करते हुए कहा—' तुम अन्धकारको दूर करने वाली हो। तुम रविके आगमनका कारण हो। तुम्हारे जिन स्निग्ध चरणोंका अनुसरण करती हुई ज्योति आती है उन्हीं चरणोंकी दृढ़ आशा कर मैं तुम्हारी शरण आती हूँ। हे शुभ्र-सौरभ रसिके! तुम रघुवंशकी मंगलकारिणी बनो। ॥७॥

उत्सुक हृदये रात्रि-शेषरे आश्रम-यात्री
तमसा निर्मळ-गामी पवित्र-धारा
प्रांगणे कुसुम चित्रि सुवासित मोर सिंचि
मंगल-प्रदीप रचि प्रभाती तारा
मुहुर्मुहु मीन-नयने
चाहुँथिला सीता-सती शुभागमने ॥८॥

उठघु तापसकन्या—गभक आदर-धन्या
प्लावने जगत-धन्या-सती पतन
वाहारि अवगाहने अनुकम्पाकु गहणे
तमसा धार वहने कले गमन;
सतींकि तमसा भकरे
घेनि स्नेहे भासिमिला तरंग-करे ॥९॥

अमृत मधुर स्वरे भाषिला परितोषरे
"भाभा गो, मो मानसरे न पिला आशा
करिव भके विहार राजलक्ष्मी-व्यवहार
सीता करि परिहार भोग-पिपासा
भाग्यवती मोते संसारे
बोलिवे तो' योगु एका परसंसारे ॥१०॥

वने वने भ्रमि भ्रमि गण्ड कुहुके न भ्रमि
बहु बाधा अतिक्रमि स्वच्छ जीवने
अन्धार कुञ्ज न गणि आलोक सुख न मणि
चालिछि दूर सरणी नत वदने;
ममत कराछि सफळ
तोय-दाने तोषि तीरवासी-सकळ ॥११॥

निर्मलगामी तमसा पवित्र धारा रूपी आँगनको सुगन्धित जलसे सींचकर फूल बिछाकर तथा तारोंका दीप जलाकर अपने मीन-नयनोंसे उत्सुकताके साथ तुम्हारे आगमनकी राह देख रही है ॥८॥

तापस कन्याओंके स्नेहमें डूबी, संसारमें श्रेष्ठ सती सीता अनुकम्पा भाविके साथ तमसामें स्नान करनेके लिए कुटियासे निकलीं । अपने तरंग रूपी करोंसे तमसाने सतीका आलिंगन किया । ९॥

तमसाने मधुर वाणीसे कहा — 'मैं परम सन्तुष्ट हूँ । हे बेटी ! मुझे स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि राजलक्ष्मी सीता सांसारिक भोग-विलासको छोड़कर जंगलमें आएँगी और मेरी गोदमें किलोलें करेंगी । केवल तुम्हारे कारण सारा संसार मुझे सौभाग्यवती मानेगा ॥१०॥

जंगल-जंगल भ्रमण करती हुई जीवनमें नाना प्रकारके विघ्न-बाधाओंको सहन करती हुई, अन्धकारमें दुःख और प्रकाशमें सुख न मानकर सतत स्वच्छ रूपसे विनम्र चली जा रही हूँ । सभी तट-वासियोंका शोक मिटाकर उनको शीतल करती हूँ ॥११॥

मन्दाकिनी गोदावरी से सबु गुने मो ' सरि
तथापि वर्धन करिछन्ति गौरव
लभि सो पवित्र पद–चिन्ह अक्षय सम्पद
विविपद-पद्म प्रद मग सौरभ
ताहा पिला मोर वांछित
तदभावे हेउथिलि मने लांछित ' ॥१२॥

सीता बोइले, "पनीर-मधुर ए स्वच्छ नीर
नीर नुहें वननीर क्षीर प्रत्यक्षे,
गिरि-स्तनु विनिसृत होइ आसुछि अमृत–
धारा परि सीतामृतकम्पा सक्षे,
मोहो तु त मो ' मा ए बेळे
मो दुःखे विदीर्ण-वक्षा तमसा बेळे ॥१३॥

छेव भैषिमति पृष्ठ से पाव हेउछि वृष्ट
तथापि सुताकु तुष्ट करिबा पाइँ
फिटाइ स्नेह-लोचन प्रीति-मधुर-वचन
सिम्पासे बादु रचन कर गेहहाइ,
धन्य धन्य मा तो हृदय
मो दुःख आतप पाइँ बालुकामय ॥१४॥

[तपस्विनी से]

मन्दाकिनी, गोदावरी नदियाँ मेरे ही समान हैं, किन्तु तुम्हारे पवित्र चरण-स्पर्शसे ही उनकी कीर्ति बढ़ी थी। वे देवताओंके पद रजसे सुशोभित होती ही आई हैं। मेरी भी यही कामना थी और मैं इसके बिना अपनको तुच्छ मानती थी। ॥१२॥

सीतान कहा— यह नीर स्वच्छ सुवासित और मधुर है। यह नीर नहीं बल्कि जननीका क्षीर है। पर्वत रूपी स्तनसे प्रवाहित हुई यह अमृतमयी धारा सीताके लिए अमृतके समान है। अहो! तू तो इस प्रदेशमें मेरे दुःखसे विदीर्ण हृदयां माँके समान है ॥१३॥

(तुम्हारे) हृदयमें ऐसा छेद हुआ है कि वह तुम्हारी पीठके आर-पार भी दिखाई पड़ता है। तथापि अपनी कन्याको सन्तुष्ट करनेके लिए स्नेहमयी दृष्टिसे निहारते हुए प्रीतिपूर्ण मधुर वाणीसे मन बहलानेकी चेष्टा करती है। हे जननि! तेरा हृदय धन्य है! जिसके कारण मेरा महान दुःख आज कण-सा प्रतीत होने लगा है।" ॥१४॥

———

२ सीताक विलाप

सप्तम सर्ग

भिक्षा भिक्षन्ते चळे धरि मो कर
विमाने बसाइला नेइ सत्वर,
कलि विनय केते केते तर्जन,
न शुणिला कर्णपात नहि दुर्जन गो ॥१॥

जाणिलि वेश मुहुँ गुणर चिन्ह
बाहारे साधुवेश, भितरे भिन्न ।
मनन्ति लोके सबशुभद धर्म,
के जाणे धर्म नाम वहइ मम गो ॥२॥

दक्षिण मुखे चळ वाहिला रथ
कम्पाइ घनघोषे गगनपथ
कान्दिलि येते येते उच्च आरवे,
विलीन हेला रव घोष-गरवे गो ॥३॥

रथ धावरे भाषा हेव विफल
आमि पकाइदेलि भूषा सकल
देखिलि नदीमाने होइ विकल
क्षीण शरीरे येम्हे हेले निरुचस गो ॥४॥

तनु संकोचि तुंग पादपचय
भिड़िले परस्परे लभि ता' भय,
पवनी कमे होइ गला नीरव,
लुचि रहिले मृग विहग सब गो ॥५॥

९. सीताका विलाप

सप्तम सर्ग

[आश्रममें सीताका अतीतको स्मरण कर विलाप]

भिक्षा देते समय मुझे रावणने बलात् विमानमें शीघ्र बैठाया। मैंने कितनी ही अनुनय-विनय की और धमकियाँ भी दीं, लेकिन उस दुर्जन (रावण) ने ध्यान नहीं दिया ॥१॥

तब मैंने समझा कि वस्त्रके अनुरूप गुण नहीं होता। सिर्फ उसका ऊपरी वेश ही साधुका है परन्तु भीतरसे वह सर्वथा भिन्न है। लोग यमको मंगलमय मानते हैं लेकिन यह कौन जानता है कि यम भी धर्म कहलाता है ॥२॥

उस दुष्ट रावणने दक्षिणकी ओर आकाश मार्गको कम्पित करते हुए और तेज गर्जन करते हुए रथ चलाया। मैं उच्च स्वरसे विलाप करने लगी लेकिन वह रथ-ध्वनि-गर्भमें विलीन हो गया ॥३॥

रथ-ध्वनिमें मेरी करुण ध्वनि विफल हो जाएगी यह जानकर मैंने शरीरसे सकल आभरण उतार कर फेंक दिए। मैंने देखा कि नदियाँ विकल होकर शीर्ण शरीर धारण कर मानो निश्चल हो गई ॥४॥

भयभीत होकर बड़े-बड़े वृक्ष अपना शरीर संकुचित कर आपसमें भिड़ने लगे। धीरे-धीरे पृथ्वी नीरव हो गई और पशु-पक्षी सब भयभीत होकर छिप गए ॥५॥

पूर्व पश्चिम याम्य ककुभमय
क्रमे दिशिला गाढ नीलिमामय,
मही कक्षण किछि न हेला दृष्ट,
तहिं मध्यकु रथ वाहिला सुष्ठ गो ॥६॥

अग्रे दिशिला दिगमूल उज्ज्वल,
क्रमे भासिलि ताकु बन-अनल,
येतिकि हेला रथ ता पाश पाश,
असंख्य ज्योतिपुञ्ज हेला प्रकाश गो ॥७॥

भाविलि नभ तेजि तारा सकळ
दिवसे छन्ति रहि बळकु बळ,
बिधु बिरहे तेजि नभोमण्डळ
हृदये जाळुछन्ति बिरहानळ गो ॥८॥

किवा मो मर्त्यलीळा होइछि शेष,
शमनपुरे हेउअछि प्रवेश ?
देखिलि मनोहर अट्टाळीश्रेणी
दिशन्ति रम्य हेम-कळस घेनि गो ॥९॥

दिशिला क्रमे पुर—अट्टाळी श्रेणि,
नगर रञ्जिअछन्ति स्वर—वीथिति
स्वकरे हर्म्य शिर कळसमान
रयारि करअछन्ति आत्मसम्मान गो ॥१०॥

सेकाळे मने मोर हेला विचार,
अटइ योगी शिरधे शमनद्वार,
हस्ताम्र पाश यिबि सहर्षे पशि
उन्माद दीप्त पति-भकति-असि गो ॥११॥

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण-ये तीनों दिशाएँ क्रमशः घने अन्धकारमें विलीन हो गईं। अन्धकारके कारण पृथ्वीपर कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ा। ऐसे समयमें दुष्टने रथ चलाया ॥६॥

सामने कुछ उज्ज्वल आभा दिखलाई दी जिसे मैंने दावानल ही समझा। रथ जितना ही समीप जाने लगा उतनी ही उसकी तेजोमयी ज्योति प्रकाशित होने लगी ॥७॥

मैंने यह सोचा मानो उडुगण सब आकाश मार्ग त्याग करके विलामें झुण्ड के झुण्ड प्रकाशित हैं। मानो वे चन्द्रमाके विरहमें व्यथित होकर नभ-मण्डल छोड़कर हृदयमें विरहानल जला रहे हैं ॥८॥

अथवा मेरी सांसारिक लीला समाप्त हो चुकी है इसलिए मैं मानो यमपुरमें प्रवेश कर रही हूँ। स्वर्ण कलश-युक्त सुन्दर दिखलाई पड़नेवाली बहुत सी इमारतें मैंने देखीं ॥९॥

मानो सूर्यने अपनी प्रखर किरणोंसे सोनेके उन कलशोंको मौंजकर उज्ज्वल किया है ॥१०॥

उस समय मुझे ऐसा लगने लगा कि यह योगी निश्चय ही यमदूत है और मैं पति-भक्ति रूपी दीप्त तलवार ऊँची किए यमराजके सम्मुख सगर्व उपस्थित होनेवाली हूँ ॥११॥

ता परे रघुपति मोते भणाइ
बोइले स्नेहशून्य मेने भणाइ,
"कुसंग बळि नाहिं लागते पाप,
कुसंगी सगे मिळे घोर सन्ताप गो ॥१२॥

कामान्ध वानर पाप-भवने
थिलु, स्परशि थिबु पाप तो मने,
न पारे करि आउ तोते ग्रहण
ग्रहण कले हेब लोकगर्हण।" ॥१३॥

चळन्त जळ कले मोचे गमन
आउ कि ताकु रखि पारइ घन ?
अनळ शिखा परि अनळ वहि
हेले से जळ स्वर्णे घने मिशाइ गो ॥१४॥

भाविलि, थिलि सिना धरि जीवन
सेविबि बोलि प्रभु पदमचरण,
न हेबि यदि पदस्पर्श भाजन,
जीवने आउ मोर कि प्रयोजन गो ॥१५॥

रहिबि देह चाहिं चाहिं श्रीमुख
एथुं अधिक मोर कि अछि सुख ?
दगय हेले देह अवश्य प्राण
प्रभु श्रीअंगे याइ पाइब स्थान गो ॥१६॥

मो तनु दग्ध हेले हेबत छार,
ताहाकु कराइब पादपे सार
से तरु काष्ठ देइ भरतंक हस्ते
कराइ देव प्रभु पादुका मोते हे ॥१७॥

[तपस्विनी 'रु]

उसके बाद रामचन्द्रजीने मुझसे स्नेह रहित दृष्टिसे बुलाकर कहा— 'कुसगसे बढ़कर पाप संसारमें नहीं है और कुसगीके साथ रहनेके कारण बहुत दु ख झेलना पड़ता है ॥१२॥

तू कामान्ध राक्षसके पापपूर्ण भवनमें थी इसलिए पापने तेरे हृदयको स्पर्श किया होगा अत मैं तुझे ग्रहण नहीं कर सकता। यदि मैं तुझे ग्रहण करूँ तो यह लोगोंके सामने बुरा मालूम होगा।' ॥१३॥

पानीकी धारा जब बादलसे अलग होकर नीचे गिर जाती है तब क्या बादल फिर उसे रख सकता है ? यदि अग्नि शिखाके समान वह अपनेको जलाकर भस्म कर दे तो फिर वापस आकर वह बादलमें मिल सकती है। ॥१४॥

मैंने सोचा कि प्रभुके पद्म चरणकी सेवाकी आशामें ही मैंने जीवन धारण किया था। अब यदि चरण छूनेके अधिकारके योग्य भी नहीं हूँ तो इस जीवन धारणसे क्या प्रयोजन ? ॥१५॥

श्रीचरणोंकी ओर देखती हुई मैं अपने शरीर को जला दूँगी क्योंकि इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सुख है। शरीरके जल जानेसे यह प्राण अवश्य प्रभुके श्रीअंगमें स्थान प्राप्त कर सकेगा, अर्थात् मिलकर एक हो जाएगा ॥१६॥

मेरा शरीर दग्ध होकर अवश्य राख होगा और वृक्षोंमें खादके रूपमें उपयोगी होगा। उस वृक्षकी लकड़ी (में स्थित मुझे) लेकर बढ़ई जब अपने कौशलसे प्रभुके लिए पादुका बनाएगा उस समय भी मुझे प्रभुकी पद सेवाका सौभाग्य मिलेगा ही ॥१७॥

---

३ ग्रीष्म-वर्णन

अष्टम सर्ग

जीवने यउवन वहिला सम वसन्त वहि गले हेला ग्रीष्म,
पुणि प्रकृति यथा हुए प्रखरा, प्रचण्डतर होइ आसिला खरा ।
पुण विषय-भोगतृष्णार परि सञ्चार कला मृगतृष्णा सुन्दरी ।
धुळी उड़िला देखि झाळमळी तक, तृपत घन काळे रड़े चातक ।
पळास मंगे नाहिं पुण सुरंग अनित्य एहिपरि सब-प्रसंग,
तापे अधिकतर मल्ली फुटिला, अधिक वास तार अंगु छुटिला ।
साधु हृदय तापे हुए अटळ, अरण्य हुए शान्ति-यश प्रबळ,
कुवस्त्र अमाइला ताकु हरषे, साधव पाइ साधु अवस्य रसे ।
एक हृदये पूर्इ कले विचार, ग्रीष्मर्गे करुचिता वास सञ्चार,
वरषा हेले मही हेब शीतळ, शान्ति लभिबे जीव जन्तु सकळ
कदम्ब केतकी त वासलपन, गुहन्ति, करिबे से लोकतर्पण,
समय करि जन रञ्जन भार देखिबा हसि-हसि तक ससार ।
उदय कमळिनी उन्माद मधा सहर्षे समर्पण करि से कथा
बोइला मुहिं थाइ सुन्दर संगे भासिबि काळ-सिन्धु-तुंग-तरंगे ।

---

५ ग्रीष्म-वर्णन

अष्टम सर्ग

[आश्रमका ग्रीष्मकालीन प्रकृति-वर्णन]

जिस प्रकार जीवनमें यौवन बढ़ता है उसी प्रकार वसन्त बढ़ते-बढ़ते ग्रीष्म रूपमें बदल गया। यौवन शक्ति जैसे तेजमय होती है, उसी प्रकार प्रचण्ड धूप धधकने लगी। विषय-भोगके सुखमें अतृप्तिके समान मृगतृष्णा रूपी सुन्दरी सञ्चरित हुई। सेमरकी रुई इस प्रकार उड़ती दिखती है, जिस प्रकार कंजूसका धन मौकेपर तिजोरीसे उड़ता है। जिस प्रकार पलासके फूलका रंग अब वह नहीं रहा उसी प्रकार संसारकीसी रक्षा भी अनित्य है। जिस प्रकार तेज धूप पाकर मोगरा अधिक फूलता है और अपनी सुगन्ध चारों ओर फैलाता है उसी प्रकार कष्ट पाकर साधुका हृदय भी दृढ़ होता है, जिससे उन्हें यश और शान्ति मिलती है। बेला फूलको देखकर नवमल्लिका आनन्दसे फूल उठती है उसी प्रकार साधुको देखकर साधु प्रसन्न होता है। दोनोंने मिलकर यह निश्चय किया है कि हम दोनों तमाम ग्रीष्म ऋतु भर इसी प्रकार सुवास वितरण करती रहेंगी, तदनन्तर वर्षा होगी, पृथ्वी शीतल होगी और संसारके सब जीव शान्ति पायेंगे। कदम्ब और केवड़ा भी अपनी सुवासके लिए कंजूस नहीं हैं। वे भी जन-जनका आनन्द दान करनेवाले हैं। जन मनके रञ्जन करनेका भार हमारे ऊपर है हम उसको पूरा कर वनस्पति जन्मसे मुक्त होंगे। कमलिनीने प्रसन्न हो सिर उठा कर समर्थन करते हुए कहा—मैं भी कालिदास-समुद्रकी ऊँची तरंगोंमें तुम लोगोंके साथ कूदूँगी।

---

४. प्रणयांकुर

प्रथम सर्ग

जय वेदव्यास जय कालिदास भारती-प्रिय-नन्दन
तुम्भे ज्ञानगुरु कविमण्डळिर ललाट-शोभि-चन्दन ।
तुम्भ चरणरे नमाइछि शिर मो हृद-बुद्ध-बन्धन,
तुम्भ पछे याइ भारती चरणे विनये करें वन्दन ।
येउँ पथे धसि भ्रमिछ गुरु हे, भारती-कुसुम-वने,
सेहि पथे चालि तोळिछि कुसुम पड़िछ येते नयने ।
नयने पड़िछ यतने महिँकि न पाइछ मोर हस्त,
से उच्च शाखर कुसुम नयने रहिछि होइ निरस्त ।
तोळिला कुसुमे हार गुम्फि देबि उत्कळ-जननी-गळे,
भक्तिरे जननी-पाद-पद्मे पूजि मन मज्जाइबि मुदे ॥१॥

शकुन्तळा जळा सिंचि आरम्भिले नव मल्लिकार मूळे,
मधुकर एक पड़िला एकाळे ये पिला निमाळी फुले ।
उड़ि पुणि वसि वसे वारम्बार सुन्दरी मुखमण्डळे,
त्रिताड़ित हेले उड़ याए पुणि मुहुर्मुहु उदम्य तळे ।
दीर्घ गुणु स्वरे मेलेमेळे चारे करि निए प्रदक्षिण,
यहिँ याए तहिँ याए चपळार नयन पलकहीन ॥२॥

४ प्रणयांकुर



प्रथम सर्ग

हे भारतीके प्रिय पुत्र कालिदास और वेदव्यास ! तुम्हारी जय हो। तुम कवियोंके ज्ञानदाता गुरु हो एवं ललाटमें शोभित चन्दनके समान हो तुम्हारे चरणोंमे विधिने मेरे हृदयका बन्धन लगाया है। तुम्हारा अनुकरणकर मैं भी उसी भारतीकी चरण-वन्दना विनयके साथ कर रहा हूँ। हे गुरु आपने जिस मार्गसे भारतीके पुष्पवनमें भ्रमण किया है, मैं भी उस मार्गपर चलूँगा तथा सामने आए हुए उन्हीं फूलोंको तोड़ूँगा जिन जिनपर मेरा हाथ पहुँच सकता है। जिनपर मेरा हाथ नहीं पहुँच सकता, यत्न करने पर भी उन ऊँची शाखाओंके पुष्पोंके चयनसे मैं वञ्चितही रहूँगा। मैं उन तोड़े हुए पुष्पोंकी माला गूँथकर अपनी उत्कल जननीके वक्षपर पहना दूँगा तथा भक्ति पूर्वक उसके चरण कमलोंमें अपने मनको लीन कर हर्षित होऊँगा ॥१॥

[शकुन्तलाका [illegible]]

एक बार शकुन्तलाने मल्लिकाकी जड़में पानी डालना प्रारम्भ ही किया था कि उसी समय नव मल्लिका फूलोंपर बैठा हुआ भौंरा उड़ते हुए सुन्दरीके मुखपर आ बैठा। वह बार-बार उड़ता है और बैठता है और हटा देनेसे फिर उड़ जाता है और फिर नीचे आ जाता है। कभी-कभी दीर्घ गुञ्जनके साथ मँडराने लगता है। फल-स्वरूप इस अबलाकी अपलक दृष्टि वह जहाँ-जहाँ जाता है, उसका अनुसरण करती है ॥२॥

कर धाळि कर्इ उठि पुलि वक्ष डेरि कवि प्रोवा भांगि,
मळि तड़ि तड़ि मर्सकी भगिरे पड़िगाए चपळांगो ।
ए नृत्य बधान माम्य सभिबाकु केहि त न पिले कसि,
सुरांगना नृत्य नीरस मणन्ते वेणुपिले सुरपति ।
लज्जा विरहित स्वार्थ विजड़ित विवश-वनिता-नाट,
सारस्य-शोभित लास्य केबे काहिं देखिपान्ति सुरराट ?
न पारिले देखि अश्विनी-प्रणय-चळचित विवस्वान
घन-पल्लवित-तरु-अन्तराळ रसा कला तांक मान
केवळ हस्तिना-सार्वभौम चाहिं होइगले स्तम्भीभूत,
ग्रवि न याइ था पवि कले हुप ए रचा एका अद्भुत ।
अघोरे सुन्दरी सखी कि डाकिला—" आस-आस प्राणमित
से गम्भीर वाणी होइगला सेहि लास्य-सहचर-गीत ।
धनु प्रतिध्वनी उठि हेला सेहि रम्य-स्वर-सहचरी,
चन्द्रच्युत-सुधा-मोहन मन्त्र कि मन्त्रिदेला हर-अरि ।
सजाइपिला वा वीणा काम-वधु बजाइदेला झंकार,
हलाइले राजा धर्म्म-मणि ता कुसुम-धनु-टंकार ।।३।।

[प्रणय वल्लरी से]

वह हाथ हिलाती है निहारती है गदन घुमाती है, कमर झुकाती है अत: उस भौंरेको हटानेकी चेष्टामें नृत्य भावों और मुद्राओंका सञ्चार हो जाता है। इस नृत्यको देखकर अपनेको सौभाग्यवान मानने-वाला वहाँ कोई नहीं था। देव-बालाओंके नृत्यको नीरस मानकर इन्द्र भी इसे देख रहे थे। सुर-बालाओंके नृत्य लज्जास्पद तथा स्वार्थ पूर्ण ही जो ठहरे, इन्द्रने कभी इस प्रकार सरलतासे सुशोभित नृत्य देखा था? कलशीकी प्रणय प्रणालीको सूर्यने भी नहीं देखा, क्योंकि सघन पल्लवोंकी छायामें सूर्यको छिपाकर उसके सम्मानकी रक्षा की। सिर्फ हस्तिनापुरके महाराज इसे देखकर स्तब्ध हो गए। आश्चर्य है कि उन्होंने अपने हृदयको कठोर कैसे बना लिया। जब व्याकुल होकर सुन्दरीने सहेलियोंको पुकारा हे सखियो आओ-आओ। उस समय उसकी वाणी नृत्यकी सहचरी संगीत बन गई। वही ध्वनि वनमें गूंज उठी और स्वरकी साथिनी बनी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कामदेवने चन्द्रसे सुधा लाकर उसे सुधा-मन्त्रसे मन्त्रित किया हो तथा रति द्वारा सजाए वीणाके तारोंको किसीने छू लिया हो। इस प्रकारको कामदेवके पुष्प धनुषकी टंकार समझकर राजा धर्य च्युत हो गए।।३।।

---

५. प्रणय पल्लव

द्वितीय सर्ग

हृदय गतारे विवेक लोड़िला मन-सम्मिळन-पथ,
उभा होइ मन बोइला, "विवेक पूरिछि तो मनोरथ ।
प्रत्यक्ष देखिछु होइ याइथाछि करे कर सम्मिळन,
कर समपणे बुझिछु थमत न थिला बाळार मन ।
मनरे सम्मति विना विवाहरे प्रमाण यद्यपि नाहिँ,
कुत्सक कथा लगाइ चाहिँला, कह कि करन्ता आउ ?
बोलिछु अबा तु बाळिकार मन अधीन अटे पितार,
बाळिका नुहेँ से युवती, ता मने नाहिँ पितृ-अधिकार ।
स्वाधीन युवती स्वाधीन मनरे करिछि कर अर्पण,
साक्षी सखीद्वय, साक्षी ता हृदय साक्षी नाथ शालीमण ।

विवेक—"सेहि स्वेच्छाचार शुणि मुनिवर हुअन्ति यद्यपि क्रुद्ध ?

मन—"चिर तप शीळ मुनिक विवेक नुहेँ कि तोठुं प्रबुद्ध ?'

विवेक—"से कर बन्धने हुळहुळि काहिँ कळा होइ नाहिँ पाणि',

मन—"सारिका-वचने हुळहुळि देले सहर्षे प्रइतिरानी ।
पाणि न पारिछु, सिक्त होइथिला रमणी-हस्त-कमळ,
स्वेद ना मानिछु मिथे कुन्तधर वाळिथिले पूत जळ ।"

५. प्रणय पल्लव

द्वितीय सर्ग

[दुष्यन्तके हृदयमें द्वन्द्व]

हृदय को जानेसे विवेक दैहिक मिलनकी राह ढूँढ़ने लगा । उस समय मनने उपस्थित होकर कहा—हे विवेक तेरी इच्छा पूर्ण हुई । हाथोंमें हाथ मिला हुआ है यह प्रत्यक्ष दिख रहा है । हाथ अर्पण करते समय तूने यह समझा कि वह नाराज नहीं थी और सम्मतिके लिए यदि प्रमाण चाहता है तो कुरुवकने (साड़ीमें) काँटे उलझा मुँह फेरकर देखा है । अब बताओ वह और क्या कर सकती है । तू यह कह सकता है कि कन्याका मन पिताके अधीन है । लेकिन वह युवती है बालिका नहीं । युवतीके मनपर पिताका अधिकार नहीं रहता । इस स्वाधीन युवतीने स्वाधीन भावसे, हस्त-अर्पण किया है । इसकी साक्षी देनेवाली हैं दो सहेलियाँ, उसका अपना हृदय तथा आस-पासके वृक्ष और लताएँ ।

विवेक—'इस स्वेच्छाचार कर्मको सुनकर यदि महर्षि क्रुद्ध होंगे तो ?'

मन— चिर तपस्वी मुनिका हृदय क्या तुमसे अधिक विशाल नहीं है ?'

विवेक— उस कर बंधनमें न उलू ध्वनि की गई, न पलार्घ्य ही दिया गया था ?'

मन—'प्रकृति देवीने मैनाके मुखसे प्रसन्नताकी उलू ध्वनि की है । क्या तू नहीं जान पाया कि रमणीका कर-कमल भीगा था, जिसे शायद तूने पसीना माना ! पर वह स्वयं ब्रह्माके द्वारा डाला गया पवित्र जल है ।'

विवेक—'द्विज तम पिसे किए उच्चारिला बेद मन्त्र आदि कथा ?"

मन— बसन्त कोकिल उच्चे भाषुचिला, 'श्रीरामस्य सीता यथा'"

विवेक— 'स्वच्छन्दे अबला कर परिबार मुहर्दं कि बलात्कार ?"

मन— 'प्रणये युवती कर याचि देबा सम्मति नाहिं स्वीकार।
प्रणय-राज्यरे प्रणयिर बळ प्रणयिनी लाड़ पाए
घन संघर्षण ब्यतीत बिद्युत कोळकु तार न याए।'

विवेक— 'घनबळे येबे प्रीति बिद्युतर गर्जन कांहिकि भीम ?

मन— गर्जन कि ताहा जणते बाजइ दम्पति प्रेम-डिण्डिम ?
हृदय बोइला "मुँ यहिं पाइछि तहिंकि न पले भंग,
विषम विरह-विषे होइथिब जीवनर सुखभग।

['प्रणय बल्लरी

विवेक— वहाँ तो कोई ब्राह्मण नहीं था, वेद मन्त्र आदिका उच्चारण किसने किया ?

मन— बसन्त कोकिलने मानो ऊँचे स्वरोंमें मन्त्रोंका पाठ किया–श्रीरामस्य सीता यथा।

विवेक—'सहज ही किसी अबलाका हाथ पकड़ना क्या बलात्कार नहीं है ?'

मन—'प्रणय कालमें युवतीको हाथ देनेमें लज्जा नहीं है। प्रेमके राज्यमें प्रेमिका प्रेमीकी सभय शक्तिको ढूँढती रहती है। यदि बादलोंमें संघर्ष न हो तो बिजली उसके अंकमें नहीं दिखलाई पड़ती।'

विवेक— मेघ और दामिनीमें अगर प्रीति है तो गर्जन क्यों ?'

मन— यह भीम गर्ज्जन नहीं है—संसारमें यह प्रीतिका डिण्डिम है। हृदयने कहा— मैं वहाँ जा रहा हूँ जहाँ शरीरका सहयोग न होनेसे विरह रूपी विषसे जीवनकी सरसता नष्ट हो जाएगी।'



तृतीय सर्ग

प्रियम्वदा हसि अनसूया प्रति बोइला, 'पाउ तो' हार,
मुं याहा कामद गाइलि, तु एवे गाउ कि ना एक बार ?'
अनसूया हसि बोइला, 'सो गीत, परि गुहँद मो' गीत,
मुं गीत गाइले पराण देवता होइथिबे उपनीत ।।१।।

हार मोहिथिले कि देव पुजिव शकुन्तळा प्राणेश्वरे ?"
शकुन्तळा चित्त आलोचिला, मुनि म थिला ताक मापरे ।
प्रियम्वदा ताहा जाणि शकुन्तळा-केश सजाइला छळे
पुष्प आभरणे मण्डिदेला तार केश कच कळमळे ।।२।।

अनसूया एणे अवसर पाइ पूर्ण करिदेला हार,
प्रियम्वदा पुणि बोइला, "सजनि गाअ एवे एक बार ।'
अनसूया सभे बसि हसि करि सजनीकि सावधान,
"देव आसिथिबे पराण-देवता, बोलि आरम्भिला गान ।।३।।

चूत पल्लव हेले कोकिळ आसइ गायइ मधुर भाषा,
पुष्प पल्लव हेले पराण देवता पूरण करन्ति आशा ।
निमळ गगने चन्द्र थिले सिना दिशन्ति नर-नयने,
निर्मळ चीरति बात होइथिले पाशकु आसन्ति जने ।।४।।

सुमन प्रकृति समइ विहति घुणा नाहिं काळे काळे,
से कथा अन्यथा हेबार व्यवस्था अछि कि मो सखी भाले ?
रत्न-परीक्षक रतन पाइले देव कि पारइ छाडि ?
विकशित फुल हसरे पड़िले के देइछि पदे माडि ?।।५।।

६ प्रणय प्रसून



तृतीय सर्ग

[राजा दुष्यन्तके स्वागतकी कल्पना]

प्रियम्वदाने हँसकर अनसूयासे कहा— अपनी माला रख दे। मुझे जो मालूम था मैंने गाया अब तू भी एक बार गा। अनसूयाने हँस कर कहा— मेरा गीत तेरे जैसा नहीं है। अभी मेरे गीत गानेसे प्राण-देवता उपस्थित हो जाएँगे ॥१॥

मालाके बिना क्या अर्पितकर शकुन्तला प्राणेश्वरकी पूजा करेगी ? शकुन्तलाका ध्यान दूसरी ओर था इसलिए उसने यह वार्तालाप नहीं सुना। प्रियम्वदा यह जानकर शकुन्तलाके केश सँवारने लगी तथा कौशलसे फूलोंके आभरणों द्वारा उनका केश विन्यास किया ॥२॥

इस अवसरपर अनसूयाने माला पूरी कर दी। प्रियम्वदाने फिर कहा—'हे सहेली अब तो एक बार गाओ। अनसूयाने हँसते हुए बैठकर सखीको सावधान कर दिया और कहा— देखो प्राण-देवता आ जाएंगे। यह कहकर उसने गाना प्रारम्भ कर दिया ॥३॥

आमके पक जानेसे कोयल आती है और मधुर स्वरसे गाती है। इसी प्रकार पुष्पके पक जानेपर प्राण-देवता आ कर अभिलाषा पूर्ण करते हैं। जिस प्रकार हाथमें धरे हुए आइनेमें निर्मल आकाशका चन्द्र दिखाई पड़ता है उसी प्रकार शुद्ध प्रीति प्राप्त होनेपर लोग पास आते हैं ॥४॥

सुजनोंकी प्रकृतिका विकृत होना कभी सुना नहीं गया। लेकिन क्या इस उक्तिका विपरीत होना मेरी सखीके भाग्यमें है ? रत्न प्राप्त होनेपर जौहरी क्या उसे छोड़ सकता है ? विकसित पुष्प प्राप्त होनेपर क्या कोई उसपरसे भुलता है ? ॥५॥

रसमा विकृत न पिसे अमृत काहुक लागिछि पिता ?
या' कथा कथिसे विमुग्ध बल्लरी होइयाए पल्लविता ।
आस मों सधीर पराण-देवता, काहिकि लुब्धि हुवे ?
सन्मुखरे परे विराजित तुअ मो सखी पूजिब मुदे ।" ॥६॥

'प्राण विन रवि प्रियम्वदा सखी कौतुका परिहासरे,
'विधुत वेगरे आसिलेणि नृप तो मधुपुर-वर स्वरे ।
'आसिलेणि नृप सबरे चमकि शकुन्तला देखा चाहिं,
निकुञ्ज दुआरे उमा होइछन्ति प्राणप्रिय मरसाईं ॥७॥

[प्रथम बल्लरी शे]



जिस अमृतके प्राप्त होनेसे शुष्क वल्लरी भी पल्लवित हो जाती है, वह अमृत बिना रसनाकी विकृतिके क्या कभी किसीको कटु लग सकता है ? हे मेरी सखीके प्राण-देवता ! आओ हृदयमें क्यों छिपे हो ? एक बार सामने आओ सम्मुख आनेपर मेरी सखी तुम्हारी पूजा करेगी ॥६॥

प्रियम्वदाने हँसकर कहा—'गाना बन्द करो तुम्हारा मेढक-सा स्वर सुन कर 'महाराज आ गए हैं। महाराज आ गए हैं' यह सुनकर शकुन्तलाने चौंककर देखा, निकुञ्ज द्वार पर प्राण प्रिय राजा खड़े ह ॥७॥



◘ प्रणय सौरभ

चतुर्थ सर्ग

एकाळे मुनीन्द्र आसि स्नेहदृष्टि देइ शकुन्तळा प्रति,
विचारिले मने शकुन्तळाहीन हेब मो आश्रम सम्प्रति।
से विचारे हृद विक्षोभित होइ गला मुनिवरंकर,
मृणाळ-नाळसी गळ प्रवेशिले येसने कमळाकर।
हृद मान्दोळने नयनयुगळे जळ हेला टळ टळ,
विकम्पित स्वरे स्वत आसियाए गळन-गळकु जळ।
सेहि काळे यदि कथा कहिथान्ते मधु याइथान्ता बहि,
पान्थतरु देहे यव फिटियाले पान्थ कि पारइ रहि?
समय पाइले जीवने प्रवृत्ति फुटि पड़िथाए आसि
प्रवृत्ति वर्जित के अछि जगते कि गृही कि वनवासी? ॥१॥

वसि मुनि पाशे सुताकु वसाइ आगे स्थिर करि मन
सस्नेहे बोइले "माआ गो, तु आजि यिबु पति सदन।
पितृ तपोवने शान्तिर भवने सखी सगे खेळि रंगे,
यिबु एबर सम्पत्ति-सलिळ-संसार सिन्धु-तरंगे।
नाव विना केहि सागरे पशिले समइ घोर विपद,
संसार-सागर पाइँ महापोत एकमात्र स्वामि-पद।
नारीमानंकर स्वामी टि ईश्वर स्वामित्व धरम्म स्वर्ग,
लक्ष्मी सदा पतिप्रसाद सगिनी स्वामि-प्रीति-अपवर्ग।
स्वामी गुरु स्वामी परम बान्धव स्वामि-सेवा नारीधर्म,
स्वामि-पदे भक्ति अर्चनारे मति अर्पि तु करिबु कर्म्म ॥२॥

चतुर्थ सर्ग

[मुनिका शकुन्तलाको उपदेश]

इसी समय महर्षिने आकर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे शकुन्तलाको देखकर, मनमें विचार किया कि शीघ्र ही यह वन शकुन्तला विहीन हो जाएगा। इस विचारसे महर्षिके हृदयमें हलचल मच गई मृणालके लोभी हाथीके कमल वनमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार हलचल मच जाती है, ठीक उसी प्रकार हृदयमें हलचल मचनेके कारण मुनिकी आँखोंमें पानी छलकने लगा। जिस प्रकार चञ्चल तालाबमें कमलके पत्तोंपर पानी अपने आप पहुँचता है, उसी प्रकार बातचीत करते-करते अनायास ही उनकी आँखोंसे अश्रु-धार बहने लगी। जिस प्रकार मार्गमें रथ आ जानेसे पथिक रुक नहीं सकता उसी प्रकार समय आनेपर जीवनमें प्रवृत्तिका विकास होता है। गृहस्थ और वनवासी दोनों ही इस संसारकी प्रवृत्तिसे अलग नहीं हो पाते हैं ॥१॥

महर्षिने मनको स्थिरकर कन्याको पास बैठाया और स्नेहपूर्ण भावसे कहा— मेरी बेटी आज तू पतिके घर जाएगी। आज तक तू शान्त तपोवनमें सहेलियोंके साथ खेलती थी। अब तुझे सम्पदापूर्ण संसार रूपी सागरमें प्रवेश करना होगा। यदि कोई बिना नावके सागरमें प्रवेश कर तो घोर विपत्तिमें पड़ जाता है। संसार रूपी सागरको पार करनेके लिए स्वामी-पद ही एकमात्र महा नौका है। स्वामी ही नारीका ईश्वर माना जाता है और स्वामी-पद नारीके लिए स्वर्गके समान है। लक्ष्मी हमेशा पतिव्रताके साथ रहती है और स्वामी-प्रेमसे अपवर्गका सुख मिलता है। स्वामी श्रेष्ठ गुरु और मित्र होता है। स्वामीकी सेवा करना नारीका धर्म है इसलिए स्वामीके चरणोंमें ध्यान अर्पित कर भक्तिपूर्वक अपना काम करना ॥२॥

स्वामी या कहिबे दुष्कर हेलेहेँ पाळने हेबु तत्पर,
परे या बारिब भाउ तहिं केबे हेबु नाहिं अग्रसर ।
दुःख थिले मने दूर करिबु ता स्वामिङ्करि नाम मात्र,
परिहास कले तांकु न भाविबु प्रति-परिहास-पात्र ।
स्वामिङ्क भोजन परे तु भुञ्जिबु सोइबु शयन परे,
स्वामिङ्कर शय्या तेजिबा पूर्बरु उठुथिबु प्रत्युषरे ।
अवसर देबु नाहिं तो नेत्रकु पर पुरुष निरीक्षणे,
सोदर हेलेहेँ निर्जने निकटे रहि देबु नाहिं क्षणे ।
स्वामी येबे रोष करिबे अथवा करिबे यदि भर्त्सना,
से रोष न घेनि मन चिरे सहि करिबु तांक अर्चना ॥३॥

निज करे रान्धि निजे बेढ़िथिबु पत्तिङ्कि अन्न व्यञ्जन,
भोजन समये पाशे ठिआ होइ चाळिबु धरि व्यजन ।
स्वामि-सेवा कार्य्ये नारी प्रतिनिधि कदापि करिबु नाहिं,
बिना वेतनर परिचारिकाकु सर्बे देबु पठाइ ।
स्वामी तो अबनी-भार बहिछन्ति तो शिरे तांक चरण,
केते धैर्य तोहो पाइँ प्रयोजन रखिबु सदा स्मरण ।
बास भूषणर गर्ब न करिबु अथा तहिँ पाइँ मळि,
याहा देबे तोषे सन्तोषे घेनिबु जाणिबु ताहा तो मळि ।
प्रापुक चरण सेवुथिबु नित्ति गुरुर देवता मणि,
ब्राह्मुहूर्त्ते स्वामिर पूजा सिंहासन सब सम्भार कानि ॥४॥

ननान्द भाउजे केबे न चाळिबु अधिके करिबु स्नेह,
बिमना हेले से कोळकु आणिबु भाउँसि ता सुख देह ।
भाउ येते पुर-नारी थिबे तांकु करिबु भगिनी ज्ञान
से कथा कदापि न करिबु यहिँ हेब तांक अपमान ।
गुरुजन केहि पाखकु आसिले उठिबु तेजि आसन,
उच्चासन देइ बसिबा सविनये करिबु मृदु भाषण ।
उच्च हास केबे न करिबु पुणि न करिबु उपहास,
परिहास छळे करिबु नाहिँ कि सखीजन मान ह्रास ।
निजे परिष्कृत पाइ निज गृह रखिथिबु परिष्कार,
परिजनङ्कर दुःख घुचुथिबु कल्पिबु प्रतीकार ॥५॥

स्वामीकी आज्ञा कठिन होनेपर भी तू उसे तत्परतासे पालन करना। एकाध बार यदि नाराज भी हो जाएँ तो उसपर कभी ध्यान न देना। स्वामीको देखते ही हृदयकी वेदनाको भूल जाना और परिहास करनेपर भी उन्हें परिहासके योग्य न समझना। स्वामीके भोजन करनेके पश्चात् तू भोजन करना और शयन करनेके बाद ही सोना। सुबह स्वामीके बिस्तर छोड़नेसे पहले ही तुझे उठ जाना चाहिए। अन्य पुरुषोंको देखनेके लिए कभी अपनी आँखोंको अवसर न देना तथा सगे-सहोदरोंको भी एकान्तमें पास रहनेका अवसर न देना। स्वामी यदि रूठ जाएँ या निन्दा करें, तो भी उनसे नाराज न होकर उसे सहन करना और उनकी अर्चना करना ॥३॥

अपने हाथसे भोजन बनाकर स्वयं ही स्वामीको खिलाना और खाते समय पास रह कर पंखा झलना। स्वामीकी परिचर्याके लिए कभी भी दूसरी नारीको नियुक्त न करना तथा वेतन-हीन परिचारिकाको घरसे भगा देना। तेरे स्वामी जिन्होंने सारी पृथ्वीका भार ग्रहण किया है, उन्हींके चरण तेरे सिरपर हैं इसलिए स्मरण रखना कि तुझे अत्यधिक धैर्यकी आवश्यकता है। वस्त्राभूषणोंकी याचना तथा उनपर गर्व न करना जो भी दें उसे अपने उपयुक्त समझकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण करना। गुरु-देवता मानकर रोज सासकी चरण-सेवा करना। सास ही स्वामीकी पूजा सिंहासनका और सर्व सम्पदाओंकी खान है ॥४॥

ननदके हठ करनेपर न खीझना बल्कि अधिक स्नेह करना। नाराज होनेपर हाथ-मुख सहला कर उसे गोदमें ले लेना। और भी जितनी परिचित नारियाँ हों उन्हें भी बहन-सी मानना। जिससे उनका अपमान हो ऐसा काम कभी भी न करना। बड़ोंको आते हुए देख उनके सम्मानार्थ आसन छोड़ देना और उनका उच्चासन देकर उनसे विनयके साथ मधुर सम्भाषण करना। कभी अट्टहास न करना और कभी किसीका उपहास भी न करना। परिहासमें भी कभी किसी सहेलीका अपमान न करना। स्वयं स्वच्छ रह कर अपने घर-बारको भी स्वच्छ रखना। परिजनोंका दुःख सुनना और उसका निवारण करना ॥५॥

समाकुल होइ आसि केहि तोर भयथा प्रकासा कले,
कर्णिनिबु तार आगमन तोते ठकिबाकु कउशळे ।
स्वामी होय, स्नेप कमाइबाकु तो कणिव आसि ये मारी,
ता कथा बियम बिय मणिपिछु से एका तोर मगारि ।
एते बिन याए मणिपिछु प्रिय सम्पसि तो तपोवन,
एमर मणिबु मण्डिळ-अबमी हेला तोर प्रियधन ।
तपोवन-महो-स्नु-गत स्नेह महीरे करिबु स्यस्त,
मृग-मृगी-गत ममता करिबु मानव-समाज गत ।
स्वामी तोर अपि स्वस्थ मण्डित करिछन्ति राज्याश्रम,
से आश्रम-नीति रखणे निजर जीवन करिबु सम । ' ।।६।।

[प्रचय बस्करी से]

यदि कोई बिना बुलाए आकर तुम्हारी प्रशंसा करे, तो उसका आगमन तेरे लिए हानिकारक ही होगा—ऐसा मानना। स्वामीपर रुष्ट होनेके लिए यदि कोई नारी तेरे सामने उनका दोष-वर्णन करे, तो उसकी बातको जहर-सा मानना और उसे अग्नि-सी समझना। तूने आज तक इस तपोवनको अपना प्रिय धन माना था लेकिन आजसे तू सारे संसारको अपना प्रिय धन मानेगी। तेरा वह स्नेह जो अब तक तपोवनके वृक्षोंको प्राप्त था, अब उसे समस्त विश्वपर न्यौछावर करना होगा और मृग-मृगोंको दी जानेवाली ममताको सारे मानव समाजको देना होगा। तेरे स्वामी राज्याश्रमकी रक्षामें ऋषिके समान हैं, तुझे उस आश्रमकी नीतिकी रक्षाके लिए अपने जीवनको योग्य बनाना होगा ॥६॥

८ प्रणय फळ

षष्ठ सर्ग

शिशिर-सदने चम्पिका मञ्जन मनोहर रूपवन्त,
ता देखि शिशिर आनन्दे अधीर हेला येन्हे उनमत्त ।
स्थूळ उर्ण-वास बाछि-बाछि देला येड़ि सकळकु दान,
सुपक्व धोधूम-राशि दाने कला बाम्भोति समाधान ।
इक्षु-दण्ड-मान खण्ड-खण्ड करि खेपिला केदार-गर्भे,
कुसुम-कुसुम-रञ्जित वसन पाइले रसिक सर्वे ।
दिगे-दिगे देला हरिद्रारञ्जित मधुमय शुभ पत्र,
आतप तापित जने वितरिला स्वच्छ स्वच्छ आतपत्र,
गगनचारिंकि देबापाइँ पत्र नेला पवन-पवमान,
करिनेला पथ धूळि-विरचित मँजरी-स्वच्छ-सोपान ।
निर्वासित पद्म-समूहु आणिला हृदे होइ दयायुक्त,
शीतविकम्पित प्रभातकु कला कुज्झटिका-कारामुक्त ।
रात्रि मोमुचिका सुदीर्घ समय हसन्ती वहन दण्ड
क्षमा करि ताकु पुरस्कार देला चन्द्रिका-पीयुष-खण्ड ।
दिगगनाभावे हृटि हृटि गले पातळ-पातळ-पाद,
चिर-ज्योति-लोभी ज्योतिष्क-मण्डळ दूर कले ज्योति-हाद ।
सुनारी कर्जुर रहिले सुवर्ण-हार संमळने व्यस्त,
चन्द्रातप पार्श्वे बाळमळिए हेले महोराज सुचि हस्त ।

[प्रणय वल्लरी से]

८ प्रणय फल

षष्ठ सर्ग

[भरतके जन्मपर प्रकृतिका आनन्द]

शिशिर कालमें वनमें सुन्दर रूपवान पुत्रने जन्म लिया उसे देखकर शिशिरके हृदयमें अत्यन्त आनन्दका प्रादुर्भाव हुआ। मानो ऊनी कपड़े सम्भूमोंको दान कर दिए गए (रख दिए गए)। पके हुए गहूँसे ब्राह्मण-भोजन कराया गया गन्नेको टुकड़-टुकड़े कर खेतोंमें बोया गया। रसिक लोगोंको नाना प्रकारके रंगके वस्त्र-दान स्वरूप मिले। सूख कर गिरे हुए पीले पत्ते मानो निमन्त्रण लेकर चारों दिशाओंकी ओर चले और धूपसे तपे लोगोंका ताप हरनेके लिए ताड़-पत्र दान किए गए। और बवण्डर (वात्याचक्र) ने गगनचारियोंका दलके लिए पत्र लिया। ऐसा लगने लगा मानो बवण्डरने आकाश तक जानेके लिए धूलका एक खम्भा ही निर्मित कर लिया हो। कुम्हलाए हुए कमलोंको मानो बधाई हो लौटा लाया। शीतकालीन प्रभातको कुहरके बन्धनसे मुक्त किया। लम्बी रात मानो अँगीठीको लेकर दण्ड भाग रही थी उसे क्षमा कर, चन्द्रिका रूपी अमृतका उसे दान किया। दिग् वधुओंने हठ करके छाल झीने वस्त्र लिए, फिर ज्योतिषगामी तारा-गण हाटसे ज्योति हरण करके मुनारी* और खजूर, सोनेका हार गूँथनेमें व्यस्त हैं। सेमर वृन्द सुन्दर चँदोवा लगानेके लिए करमें सूई ले प्रस्तुत है।

---

* मुनारी—एक वृक्ष विशेष इसमें माघमासके बीच लम्बे फल लगते हैं और पीले रंगके बहुत मुलायम फूल फूलते हैं।

१. उत्कळ लक्ष्मी

जय गो उत्कळ-लक्ष्मी एकमात्र सुन्दरी तु वसुधारे,
प्राकृतिक शोभा-राशि रहिछन्ति तो भगारे एकाधारे ।
तोहो बास पाइँ अछि केते तुंग सुन्दर शैळ शिविर,
धुयधय धार वर्षनाकारसे झरन्ति नाहिँ कबिर ।
प्रिय मृग मृगी बुलुछन्ति तोर तरु तळ भूमिमध्ये,
बुलुछन्ति मत्त मतंगयूथ वनवारिस्फुतगध्ये ।
तो विहार पाइँ स्थाने-स्थाने केते रम्य उपवनमान,
विविध सुवास फुले पूर्ण होइ रहिअछि विद्यमान ।।१।।

काहिँ गिरितळ निबिड कानन तो पाळित जन्तुगण,
अति प्रमोदरे बळ बळ होइ करुछन्ति विचरण ।
काहिँ धेनु पल नव दुर्वादळ-श्यामळ धरणी बक्षे,
धरि धरि पुच्छ-चामर ढाळन्ति एका तोहो सेवा लक्ष ।
काहिँ कुसुमित लतावोळिमान होइअछि सुसज्जित,
तोते डोळाइबा पाइँ विहगमे बसि गाउछन्ति गीत ।
काहिँ सुशीतळ पबन चपळ होइछि पल्लवित,
पल्लव-व्यजन धरि तरुगण बडदिगे बन्दायित ।
विलसिका मधुपा भटन्ति परा तो प्रिय केळिसरोवर,
तहिँ मध्ये केते केते गिरि केळि-मण्डप अति सुन्दर ।।२।।

९. उत्कल लक्ष्मी

हे उत्कल लक्ष्मी ! विश्वकी एकमात्र सुन्दरी !! तेरी जय हो !!! एक ही साथ प्रकृतिकी शोभाराशिमें तेरी गोद पूर्ण है। ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंके ये शिखिर, तेरे निवासके कारण कितने भले लगने लगे हैं, जिसके सौन्दर्यका वर्णन करनेमें कवि भी असमर्थ है। प्रिय पशुगण तेरी भूमिपर विचरण कर रहे हैं। दान-वारिसे भीगे हुए कपोलवाले मतवाले हाथियोंके समूह घूम रहे हैं। तेरे विहारके लिए जगह-जगहपर रमणीक पुष्प-वाटिकाएँ हैं जो विविध सुगन्ध युक्त फूलोंसे भरी हुई विद्यमान हैं ॥१॥

पर्वतोंके पास घने जंगलोंमें तेरे पालतू पशु झुण्ड-के-झुण्ड प्रसन्न होकर घूम रहे हैं। कहीं गायें खेतोंसे नव दूर्वा खाकर प्रसन्नताके साथ तेरे लिए पूँछको चँवर-सी डुला रही हैं और कहीं फूलोंसे लदी लताओंके बने हुए झूले सुशोभित हो रहे हैं। तुझे झुलानेके लिए पक्षीगण बैठ कर गीत गा रहे हैं। कहीं-कहीं सफेद पत्थरकी चट्टानें बिछी हुई हैं, जो पलंग सी प्रतीत होती हैं। घने लपो पत्ते धारण किए वृक्ष चारों दिशाओंमें खड़े हैं। चिलिका[1] और अंबुपा[2] तेरे लीला-सरोवर हैं और कहीं-कहीं बीचमें पहाड़ोंने सुन्दर मण्डप-से डाल रखे हैं ॥२॥

---

१ चिलिका—पुरी जिलेमें स्थित एक झील।
२ अंबुपा—कटक जिलेकी एक झील।

प्रिय सहचरी प्रकृतिसुन्दरी होइ अति सावधान,
स्थाने-स्थाने तोहो पाइँ थोइअछि केते अळंकारमान ।
प्रधानपाटरे सम्पाति थोइछि उज्ज्वळ रत्न सीमन्त,
लोकमुखे यार सुन्दरिमा कथा व्यापिछि दिगदिगन्त ।
केमन्त कौशळे थोपूछि मस्तके कापचक्रे येउ बाँधि,
तोलागि थोइछि 'गुम्फ,' गर्भे दिव्य मधामणि सन्धि ।
पर्व पर्व हेव तारामानकर दीप्तिकि चाहिँले यार,
समुद्र पुळिन थोइअछि देख तोलागि मुक्ताहार ।
तो हृदे विराजे गड़जात देश उज्ज्वळ पदक हार,
नृपति दमित-रत्न कविते प्रभा विकाशुछि तार ।।३।।

तोहो रूपे मुग्ध होइ जगन्नाथ छाड़ि द्वारावती पुर,
कालिन्दीजातट विपिनविहार सुख करि मनु दूर
पूर्वाचळ चूळे हिममणि प्राये विजेकरि नीळाचळे
प्रेमे आलिङ्गन करुछन्ति तोते प्रकाण्ड बाहुयुगळे ।
काशीधाम छाड़ि आसि त्रिलोचन रहिले एकाम्रवने,
तिनि लोचनकु तृप्त करुछन्ति तो अनन्य रूप दर्शने ।
से विश्वपावन विश्वनाथंकर गमनकु अनुसरि
जाह्नवी आसिले कटक देशे चित्रोत्पळा नाम धरि ।।४।।

पथे देखि ताकु 'समलाई' देवी मात्रे आलिङ्गन कले,
समलाई कर लागि हृदहार छिड़ि पड़िगला तळे ।
सेहिठारे भूमि होइला गभीर देवी खोजि खोजि हार,
दलित-बालुका राशि पड़ि यहिँ होइअछि स्तूपाकार ।
ऐबे हीराकुद नामे अभिहित होइअछि सेहि स्थान,
केते हीरा तहुँ पाइ तो पुअरे होइछन्ति धनवान ।।५।।

तेरी प्रिय सखी प्रकृति सुन्दरीने बड़ी सावधानीसे तेरे लिए जगह-जगह कितने ही अलङ्कारोंको रखा है, प्रधानपाटमें उज्ज्वल रत्न सीमन्त सँजोकर रखा है जिसकी सुन्दरता लोगोंके द्वारा चारों ओर फैली है। कोशलसे गोधूलीके ललाटपर काँचके टुकड़में खचित कर, तेरे लिए गुमरई के गर्भमें माथामणि हिफाजतसे रखा है। समुद्रके तटपर तेरे लिए मुक्ता माला रखी हुई है जिसकी कान्ति ताराको भी लजाती है। देशीय राज्य तुम्हारे कण्ठहारके समान सुशोभित है, रत्नोंके समान राजाओंसे उसकी शोभा बढ़ रही है ॥३॥

तेरे सौन्दर्यसे मुग्ध हो श्रीजगन्नाथ द्वारकापुरी छोड़कर और कालिन्दी तटके वनमें विहार करनेके आनन्दको त्यागकर, पूर्व दिशामें सूर्यके समान नीलाचल धाममें विराजित हो विशाल बाहु फैलाकर तुझे प्यारसे आलिंगन करते हैं। त्रिलोचन शिव काशी धाम छोड़कर तेरे एकाम्र वनमें रहते हैं। जहाँ तेरे सौन्दर्यसे उनकी तीनो आँखें प्रसन्नता प्राप्त करतीं हैं। इस विश्वके मंगलकारी शिवका अनुसरण कर जाह्नवी भी गुप्त वेषमें बिन्दोत्सला नाम धारण कर आई हैं ॥४॥

राहमें सम्बलाई सखी ने उसे देखकर प्यारसे गले लगा लिया। सखीके हाथोंसे गलेकी मुक्तामाला टूट कर नीचे बिखर गई। वहाँ हारकी खोज करनेके कारण भूमि गम्भीर हो गई और खोदी हुई बालू जमकर पहाड़के समान हो गई। आजकल यह स्थान हीराकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँसे हीरा प्राप्तकर न जाने कितने लोग धनवान हुए हैं। ॥५॥

मने-मने भेले मुँ बोइलि, धन्य-धन्य गो उत्कळ मात ।
सर्व देबदेबी हेउछन्ति तोर बिशाळ कोळरे जात ।
एणु बिश्वजने बोलुथान्ति परा सर्व तीर्थ श्रेमि हरि
पतितपावन-रूपे रहिछन्ति नीळाचळे बिजे करि ।
एणु आर्य्य कवि कहियाइछन्ति "कळौ चित्रोत्पळा गंगा,"
श्वेत तरंगिणी गुपते होइछि मंजुळ श्यामतरंगा ।
सहसा दिशिला बिराट मूरति बिराजित सम्मुखरे,
राजराजेश्वरी बेशे रथपद गदा पदम कम्बु करे ॥६॥

सुनीळ चिक्कण चरमलम्बित कुञ्चित कुन्तळ कान्ति
जन्माउछि मने वीचिविक्षोभित सरितपतिर भ्रान्ति ।
अम्लिष्ट चारु रचित किरीट बिराजित मस्तकरे,
किए न कहिब मुकुट गढ़िछि बिश्वकर्मा निज करे ।
किरीट शोभाकु शोभित करुछि कर्णभूषा मकरीकड़ि,
मकरीकड़ि तट चुम्बने कुन्तळ शोभाहिँ पाइछि बढ़ि ।
हस्त करे शंख भूषण तेमंती-भूषण दक्षिणेतरे,
चरणयुगळे नरिया भूषण शोभा सम्पादन करे ॥७॥

तरंगिणीगण नृत्य आरम्भिले मनोहर बेश धरि
बिबिध भूषणे बिभूषित होइ कुसुमे साजि कबरी ।
हीरकमण्डित-वेणी चित्रोत्पळा तहिँ दिशिला अग्रगण्या,
भ्रमरगुञ्जने मतकोमण्डळे उर्वशी जेसन धन्या ।
ता पछकु दिशा ब्राह्मणी सुबर्ण-कुसुमरे मण्डि चूळ,
नृत्यमेळे गणु न दिशा चुळव लमुचिला स्वाम फूल ।
सिंहभूमि राज-उद्याने कुसुम रचित सुरम्य हार
उरे मण्डि 'देव' कोइलि सहित संगे नाचुचिला तार ॥८॥

मेरे मनने बारम्बार कहा है—हे उत्कल-जननी ! तू धन्य है। तेरी ही पवित्र गोदमें सब देवी देवताओंने जन्म लिया है इसीलिए मानी लाग कहते हैं कि तमाम तीर्थोंको साथ लेकर पतित पावन रूप धारण करके हरि नीलाचलमें विराजमान हैं। इसलिए आर्य कविने कहा है कलियुगमें चित्रोत्पला ही गंगा है। श्वेत तरंगिणीने अपनी मन्जुल श्याम तरंगको गुप्त रखा है। सहसा एक विराट मूर्ति सम्मुख आई जो चारों धाम (भुवनेश्वर, याजपुर कोणार्क और पुरी) में व्याप्त है ।।६।।

इसके सम्ब बालोंका सौन्दर्य सागरका भ्रम कराता है। मस्तकपर गगनचुम्बी मुकुट सुशोभित है। इसको देखकर कौन नहीं कहेगा कि विश्वकर्माने इसे स्वयं अपने हाथोंसे निर्माण किया है। सागरकी कलियाँ किरीटके सौन्दर्यको दुगुना कर देती है मागरकी कर्लास लगाकर चूर्ण कुन्तल सौन्दर्यको और बढ़ा रहा है। दक्षिणमें बगालका अलंकार सुशोभित है और बाईं ओर तैलंगका करिया चरणोंकी शोभा बढ़ा रहा है ।।७।।

तरंगें मनोहर वेश धारणकर तथा भिन्न-भिन्न अलंकारोंसे सुसज्जित हो फूलोंकी कबरी सजाकर नाचने लगीं। सुरपुरमें उर्वशीके समान हीरोंके आभूषणोंसे कबरी सजाई हुई चित्रोत्पला नदियोंमें श्रेष्ठ है। उसके पीछे नानक फूलोंसे कच-राशिको सजाए हुए ब्राह्मणी थी। वह नृत्यमें इस प्रकार मग्न थी कि गिरते हुए फूलोंपर उसका ध्यान नहीं था। सिंहभूमिके राजोद्यानकी पुष्पमाला गलेमें पहनकर 'देव' और 'काइसि' भी उसके साथ नाचती थीं ।।८।।

गाजविले मधु-स्वरे मधुमय वेदव्यास गीतावळी,
कोइलि मस्तके वाहुनी शिखरी वेढविले पुष्पाञ्जळि ।
सिंह भूपकर स्वर्ण-चारिमय शुभ्र कीर्तिध्वज धरि
स्वर्णमयी स्वच्छ रेखा भासविता येथे बहु सहचरी ।
वसरणी रम्य कानन कुसुम करिविला आभरण,
वास सोमे ताहु भूषणे वेढि पिले देवदेवीगण ।
मार्गवी विस्था वया रत्नचिरा आणि तरंगिणीभेणी
चम्पा छुरिसना पुन्नाग विविध पुष्पे मण्डिविले वेणी ॥१॥

वे वेदव्यासकी गीतावलीका मधुर स्वरसे गा रहीं थीं और 'ब्राह्मणी' कोयलके मस्तक पर फूलोंकी अञ्जलि दे रही थी। सिंहमहाराजकी कीर्ति-पताका धारण कर तथा सखियोंको साथ लेकर स्वर्णमयी स्वर्णरेखा आई थी। वतरणी सुन्दर फूलोंके आभरण पहनकर आई। इसलिए सुगन्धके लोभसे सुरगण उसे भँवरके समान घेरे हुए थे। मार्गवी, विरूपा, वया, रत्नचिरा आदि नदियोंने चम्पक छुरिअना और पुन्नागकी मालासे कवरी सजाई थी ॥९॥

---

२० चन्द्र-रजनी

पूर्णिमा प्रदोषे पूर्णचन्द्र आगमन
चाहिँ तरसरे सज रजनी रमणी ।
ललाटे घेनिला शुभ्र उज्ज्वळ रतन,
कर्णयुगे शुभ्रायस्य मनोहर मणि ।
रंगाधरे मन्दहास करि परकाश
वेलाइला सुविमळ प्रसन्न वदन
हृष्ट पुष्ट कळेवरे उज्ज्वळि आकाश,
चन्द्रहिँ कोमळ करे कले आलिंगन ।
मधुरे मधुर मिशि हेला मधुमय,
ए योग मिळइ हेले सौभाग्य समय ।।१।।

से शोभारे उल्लसिला पाषाण हृदय,
जळाशये उल्लसिला कुमुद कानन
धराधरे उल्लसिला ओषधिनिचय
गगने उल्लासमय चकोर गायन ।
जनपदे पुरे-पुरे प्रदीप उल्लास
उल्लसिल देवाळय शतघण्टा स्वने
हृदये-हृदये महाउल्लास विकाश,
उल्लासे खेळन्ति ठावे-ठावे निपुणपणे ।
उल्लास नेइछि करि विश्व अधिकार,
प्रमत्तर आधिपत्य सबत स्वीकार ।।२।।

१० चन्द्र-रजनी

पूर्णिमाकी रातमें पूर्णचन्द्रके आगमनको देखकर रजनी रूपी नारीने शीघ्र ही अपना शृंगार कर लिया। ललाटमें शुक्र रूपी उज्ज्वल मणि और कानोंमें ध्रुव और अगस्त्य दोनोंको पहन लिया। इस तरह लाल ओठोंमें मन्द मुस्कान फैलाकर प्रसन्न चित्त होकर प्रकाशित हुई। और पुष्ट शरीरसे आकाशको उद्भासित कर चन्द्रमाने कोमल हाथोंसे उसका आलिंगन किया। मधुरके साथ मधुर द्रव्य मिलकर मधुमय बन गया। ऐसा संयोग सौभाग्यसे ही मिलता है ॥१॥

ऐसी शोभासे पत्थरका हृदय भी उल्लासित हो उठा। जला शयोंमें कुमुदवन प्रस्फुटित हो गए। पृथ्वीपर लताएँ उल्लासित हो गई। आकाशका उल्लास चकोरके गीतसे फैल गया। नगरमें और घर घरमें प्रदीप्त उल्लासका प्रकाश छा गया। शंख और घण्टोंकी ध्वनिसे मन्दिरोंकी प्रसन्नता प्रगट होने लगी। प्रत्येक हृदयमें असीम उल्लासका प्रादुर्भाव होने लगा। जगह-जगह आनन्द-सागरमें गोते लगाते बालक-वृन्द क्रीडा-कौतुक करने लगे। सारे विश्वपर उल्लासका साम्राज्य छा गया है। बलवानका आधिपत्य सर्वत्र स्वीकार होता है ॥२॥

सप्तस्वरूपि रजनीर मधुर मूरती
सरसम पाइ जाहिंह बसियान्ति पथ,
सावरे करन्ति आनय मंगळ आरती,
चरीची हस्तरे साजि प्रदीप सपत।
सागरे सुधाइ मुख जाहिं अवन्धति,
मन्द-मन्द हसि करन्ति उपहास,
रजनीकि बोलुपान्ति घम्बरे युवती,
स्वर्गीय मुनीन्द्रगण हेले तोर दास
तु काळरूपिणी काळी मोहिपु जगत
मानव दानव, देव सब तो भकत ॥३॥

[कविता कल्लोल से]

———

सप्तऋषि (तारा गण) रात्रिकी सुन्दर मूर्तिका दर्शन करनेके लिए रास्ता देख रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उत्तर दिशामें रात्रिकी मंगल आरतीके लिए सात प्रदीप सजे हों। लज्जासे मुख छिपाए मन्दमंदी मुस्कराती हुई, उपहास करती हुई कहती है—हे रजनी, तू बड़ी सौभाग्यशालिनी है। स्वर्गके देवतागण भी तेरे दास हैं। तूने काल रूपिणी कालीके समान संसारको वशमें कर लिया। मानव, दानव और देव—सभी तेरे भक्त और पुजारी हैं ।।३।।

———

११ अमृतमय

नव विकसित फुल गन्ध,
नव सरस कविता छन्द,
वन विहग मधुर तान
शिशु सरळ तरळ गान
नव प्रफुल्ल कमळ कानन
नव सुकुमार शिशु आनन
अमृतमय अमृतरस भराइ रेखछि जीवन ।।१।।

धीर चळित शीतळ वात,
चिर चळित कुमुदनाथ
नील धवळ चन्द्रिकाजाल,
नीरदावळि घनमाळ
मधु मधुर आलोक अपार,
नवपल्लवपतित तुषार
अमृतमय अमृतरस भरताइ रेखछि संसार ।।२।।

मिटिमिटि झकझक तारा
टपटप जळधर धारा
तम नाशने धावित धृष्णि,
तमसुत अक्षमी वृष्टि,
गिरिगह्वर प्रसूत निर्झर,
दूर लम्फित प्रपात झर्झर,
अमृतमय अमृतरस जीवन करछि जर्जर ।।३।।

मुँ त अमृत सागर बिन्दु,
मने उठिपसि सेहि सिन्धु
ढळि मिशिछि अमृत धारे,
गति करछि से अकूपारे,
पथे छाडिगले पाप तापरे
होइ निर्मळ हसिबि ता परे,
अमृतमय अमृतरस सहित मिशिबि सागरे ।।४।।

११ अमृतमय

नव प्रस्फुटित फूलोंकी सुगन्ध नवीन और सरस कविताका छन्द, वन विहगोंके मधुर स्वर, कोमल और सरल शिशुओंका सुरीला गान नव प्रस्फुटित कमलका मन और सुकुमार शिशुओंके मुख अमृतमय अमृतधारासे जीवनका बहा लेते हैं ॥१॥

मन्द-मन्द बहनेवाला शीतल पवन सदा सुन्दर चन्द्रमा, दूध-सी सफेद ज्योत्स्ना, नील-गगनमें कुसुम मधमाला उषाका कोमल और मधुर आलाक और नए कोमल पत्तोंपर गिरी हुई शबनमकी बूंद अमृतमय अमृतस्रोतमें विरहका डुबा देती हैं ॥२॥

टिमटिमाते और जगमगाते हुए तारे टपाटप गिरती हुई मेघमालाकी धारा एक तमका नाश करनेके लिए तुम्हारी शक्ति दौड़ती है। अन्धकारसे मुक्त प्रसन्न अवनि पर्वतोंसे आते हुए झरने दूर तक उछलनेवाले प्रपात, अमृतमय अमृतके स्रोतसे जीवनको जर्जरित कर रहे हैं ॥३॥

मैं तो अमृत सागरकी एक बूंद हूँ सिन्धु छोड़कर मैं आकाश पर उठी थी वहाँसे गिरकर अमृतकी धारामें मिली हुई हूँ। उस सागरकी ओर गतिशील हो रही हूँ राहमें यदि पापके तापसे तापित होकर सूख जाऊँगी तो उस समय भी शबनमकी बूंद होकर ही गिरूँगी। अमृतमय अमृतधाराके साथ सागरमें मिलकर एकाकार हो जाऊँगी ॥४॥

विश्वनाथङ्कर करुणा कमर
मधुपुर जन्म स्थळ
चाहिँ सर प्रति सच्चे करे पति
पाइबु करुणाथळ रे जीवन !
हेलेहेँ तु सात करुणानिधान राज्यरे करिछु वास
बढ़ाइले कर ताङ्कु श्रीपथर
लाभे न हेबु निराश रे जीवन !
सर्वबन्ध मन मुकरे स्मरण हेले बोलिपाए माटि
ज्ञानभ्रष्टे मधु न लागिले स्वादु
ज्ञान गब पिअ बाटि रे जीवन ।।४।।

विश्वनाथकी हृदय रूपी गुफा ही मधुर झरनेका उद्गम-स्थान है। इस झरनेको देख कर यदि ऊपर चढ़ोगे तो विश्व-बन्धुका दर्शनकर पाओगे। तेरे छोटा होने पर भी करुणामयके राज्यमें तेरा निवास है। हे जीवन! हाथ बढ़ाओगे तो चरण पानमें निराश नहीं होगे। साँप काटे हुए आदमीके मुखमें नमक देने पर वह उसे मिट्टी बताता है। इसी प्रकार यदि मूर्खको यह ज्ञान अमृत तुल्य न लगे तो हे जीवन! उसे ज्ञान रूपी बूटी घोट कर पिलाओ ॥४॥

———

१४ ताकु मध्य बोलि पारन्ति धर्म अवतार !

मन यार ब्यस्त सदा परस्व हरणे,
धन यार विगलित गणिका चरणे
जीवन या नष्ट भ्रष्ट लोकङ्कर भार,
ताकुमध्य बोलिपारन्ति धर्म अवतार ।।१।।

विद्या यार मोड़ पाए धर्मनीति मुण्ड,
बुद्धि यार करुथाए धन सत्य गुण्ड,
धने क्रीत हेउथाए याहार विचार,
ताकु मध्य बोलिपारन्ति धर्म अवतार ।।२।।

सुवर्ण हरण करि ताम्र करे दान,
धर्मे करिथाए प्रभु सन्तोष विधान,
हाकिमाकु भोग दिए नाना उपहार
ताकु मध्य बोलिपारन्ति धर्म अवतार ।।३।।

ब्राह्मण चरण पाइँ पाइथाए मथा,
खाइथाए मोड़ि ऐसे दरिद्रङ्क मथा,
करुथाए क्षमतार अपव्यवहार,
ताकु मध्य बोलिपारन्ति धर्म अवतार ।।४।।

बहिर्गत होइथाए घर, शून्य करे
दागड़ दागड़ द्रव्य आणि घरे भरे,
सेहि द्रव्यमान पुणि देखाए बजार,
ताकु मध्य बोलिपारन्ति धर्म अवतार ।।५।।

---

२३ उसे भी धर्मावतार कहा जाता है !

• • •

जिसका मन परस्व अपहरणमें हमेशा व्यस्त रहता है, जिसका धन गणिकाके चरणसे कुचला जाता है, जिसका जीवन लाखों लोगोंके मारसे दबा रहता है उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं। ॥१॥

जिसकी विद्या धर्मके नियमोंका सिर मूड़ती रहती है, जिसकी बुद्धि सैकड़ों सत्योंको चूर्ण करती रहती है, जिसके विचार धनसे मोल लिए जाते हैं, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं। ॥२॥

जो स्वर्ण हरण कर ताँबा दान देता है जो धनसे अपने प्रभुको सन्तुष्ट करता है अपने दोष छिपानेके लिए नाना भेंट देता है, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं। ॥३॥

प्रमाण-अर्थके लिए जो सत्ता प्राप्त होता है, उसे हड़प जानेवाला दरिद्रोंका गला मरोड़ कर रक्त चूसता है जनताको जो बरबाद करता रहता है उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं। ॥४॥

खाली हाथोंसे घरसे निकला हुआ गाड़ियोंसे धन लाकर घर भर ले, फिर बाजारमें उस धनका प्रदर्शन करे उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं। ॥५॥

१४ भारती-भावना

गोलक-मण्डळे भावे लक्ष करि
कहन्ति भारती-किशोरी
भारत-मण्डळे याहा कल भाव
मर्मु हेउनाहिँ पाशोरि,
गोपेन्द्र, छळे नाशि कुळ भासिल,
याहा पिला आत्म-विस्मृत तहिँरे
निज प्रभुता प्रकाशिल ॥१॥

विक्रमे हराइ विक्रमे वराइ
वशीभूत कल सकळे,
भासुर भामिनी मापि न पारिलु
तुम्भ पदसेवा न कले,
तहिँरे, उदारपण देखाइल,
एम मम पण गर्भे मैत्रि करि
पदसेवन शिखाइल ॥२॥

तुम्भ हासे हास, तुम्भ भावे भाव
रहिला तुम्भ पदे मति,
तुम्भ कथा बिना जगते आम्भर
रहिला नाहिँ अन्य गति,
गोपेन्द्र, तुम्भरि इंगिते नाशिले,
तुम्भ भरे माति निज गउरव
निजर चरण दळिलुँ ॥३॥

३४ भारती-भावना

[यह पूरी कविता श्लिष्ट है। इसमें एक ओर जहाँ भगवान कृष्णकी स्तुति है, वहीं दूसरी ओर अँग्रेजोंके प्रति भारतीय जनताका आक्रोश भी व्यक्त है। पाठकोंकी सुविधाके लिए श्लिष्ट शब्दोंका दूसरा अर्थ प्रत्येक छन्दके अनुवादके नीचे ही दिया गया है।]

गोलोक धाममें प्रभुको लक्ष्य कर भारतकी ललनाएँ कहती हैं—हे नाथ, भारत भूमिमें तुमने जो लीलाएँ कीं, वे कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। हे गोपेन्द्र छल करके तुमने हमारी जाति और कुल नष्ट किया है। जो भी हमारा अपनापन है उस पर तुमने अपनी प्रभुताका प्रकाश किया है ॥१॥

गोलक मण्डले—द्वीपान्तरमें अँग्रेज। गोपेन्द्र—श्वेत-द्वीपके अधिवासी अँग्रेज।

बलसे पराजित कर, कुकर्मसे भय दिखा कर, सबको अपने वशमें कर लिया है। तुम्हारी चरण-सेवा किए बिना हमें दिन रात चैन नहीं है। उसपर फिर तुमने उदारता की है हमारा धन-मन उदरस्थ कर तुमने पद-सेवा करना सिखलाया है ॥२॥

धर्मे-मेल्चि धरि—धर्ममेल्ची उपकारी बनाकर।

तुम्हारी हँसीमें हँसी है और तुम्हारी बातोंमें बात। इस प्रकार तुम्हारे चरणोंमें मन रमा रहा है। तुम्हारी चर्चा सेवाके बिना संसारमें हमारी दूसरी गति नहीं है। हे गोपेन्द्र, तुम्हारे निर्देशसे ही हम चल रही हैं। तुम्हारे मदसे मतवाली होकर हमने अपने गौरवको अपने ही पैरोंसे कुचल दिया है ॥३॥

तुम्भ मदे—तुम्हारे मदमें।

असने बसने शयने स्वपने
तुम्म पदे मन रहिला,
मदन वेदिले अधिक विरह
जीवनत आम्म बहिला,
गोपेन्द्र, प्राण तुम्मे सबु हुन्दर,
तुम्भर आसन वासन काशन
समस्त विशिला सुन्दर ॥४॥

तुम्भर कथारे मधुर रहिला
करि मेक हुद कळणा,
तुम्म बदलक कथा न स्फुरिले
सबु याक हेला असणा,
गोपेन्द्र, निज वास बिय मणिर्नु,
मन्मरे मोहिल तन्मर तुम्भर
महत कळङ्कि गणिर्नु ॥५॥

आम्म जीर सर कबपोरे पुष्ट
बळछु तुम्भर अनाद,
भय लभि सिना कारमभि धीरे
करि न पारिले नड़ाइ,
गोपेन्द्र, एकथा कहिहुविक याई,
भय गर्व मानि केवे कथा कह
पूव प्रतिज्ञा अनुयामो ॥६॥

गार्गिश्रमीज-काव्य पटाइला शिमु
स्नेह पाष्ठि हेला दिपिळ,
तहुँ जनागला फिस हेम तुम्मे
सहिं पूर्व मथा कि पित्त,
पान्नाळे, परिचय हेला याहार,
याहा लाणि हेला सकळ कळङ्क
नाम बढ़ाइल ताहार ॥७॥

भोजनमें, परिधानमें, शयनमें और स्वप्नमें भी तुम्हारे चरणोंमें ही मन लगा रहा। मदनको क्षण मात्र भी देखने पर विरह हमारे जीवनको जलाने लगा। हे गोपेन्द्र! तुम प्रपञ्चको जानते हो। तुम्हारा उठना बैठना बातचीत, व्यवहार सभी सुन्दर लगते हैं ।।४।।

मदन देखिले—दर्शन न होनेसे।

तुम्हारी वाणीमें मधुरता है। तुमने हृदयको नाप लिया है। तुम्हारी सारी बातें न सुनने तक सभी अलोना (फीका) लगता है। अपना वास भी हमें जहर-सा ही प्रतीत होता है। तुमने मन्त्रसे मोहित कर लिया है। तुम्हारी मुरलीके लिए हमने अपनी महत्ता खोई ।।५।।

बात—वचन। तन्तरे मुन्दर—मिलके कपड़ेके लिए।

हमारे दूध, मक्खन और मलाईसे परिपुष्ट तुम्हारी शक्तिको देखकर बलवान वीर पुरुष भी तुमसे युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे गोपेन्द्र! यह कैसी बात कही! विजयमें उन्मत्त होकर अब तुम क्या कहने लगे हो, तुम तो अपनी प्रतिज्ञाको निभानेवाले हो ।।६।।

बारमणि वीरे—जमींनके वीर। जय धर्में मातिं प्रतिज्ञा अनुयायी—(यह) भारतको स्वाधीनता देनेकी प्रतिश्रुति भंग करनेको लक्ष्य कर कहा गया है।

जिस दिन अक्रूरने यह सब किया उसी दिनसे स्नेह-गाँठ ढीली पड़ गई। उसीसे मालूम हो गया कि पूर्वमें तुम क्या हो गए हो। जिस पाञ्चालीके लिए यह सारी कलह हुई, उसका मान तुमने बढ़ाया इसीसे तुम्हारा परिचय मिल गया ।।७।।

पाञ्चालीज-शाष्टव्यापी मिल काण्ड—(यहाँ) महात्मा गांधीका सत्याग्रह आन्दोलन। पाञ्चाल—अमृतसरमें गोलीकाण्डके समय जलियांवालाबाग।

गान्धिमौज कष्ट गजमा न करि
मणिपुर करो गमन,
ज्ञान न पातिल पूरे चाड कर्लुं
येते हाहाकार क्रन्दन;
समस्ते, कीरतिर मामा चढ़िला,
पार निर्मो मेष्टि कउशळ बळे
उपसेमानन्द चढ़िला ॥८॥

परे समागमा तुम्म माम्म मेव
तुम्मे धर्मीपान्तरनिवासी,
माल्म जीवनरे माम्मर धमरे
चढ़िला पाई पिस मासि,
गोपेन्द्र, तुम्मे हेन विश्वविख्यात
माम्म सगे एक येमारे चळिले
हेजछि एबे साजमात ॥९॥

जाकित न शिर्मु तुम्म परे माइ
मासिविस मित्र सामरे,
सरळ हृदय मणि सिमा धरे
रखिलु अति स्नेहावरे,
गोपेन्द्र, कहिब कस उपकार
माहा करिअछ मित्र स्वार्थ पाईं
न पिसा माम्म दरकार ॥१०॥

तुम्मर मामरे तुम्मर परावे
मुपळमान पिसे मासि,
कोपन स्वभाव हेले हैं माम्मर
समस्ते पिसे नाहिं पासि,
करिसे न पिसे वसन हरण
द्रुपद-सुता चिन्तिकार पान
करि न पिसे से मरण ॥११॥

अक्रूरने अपने कष्टकी परवाह न की और कृष्णकी नगरीकी ओर प्रस्थान किया। हम लोगोंने बहुत हाहाकार किया। कितना रुदन था! किन्तु तुमने कान तक नहीं दिया। संसारमें तुम्हारी कीर्त्ति-पताका उड़ी। तुम्हारे कौशलसे सब विपत्ति दूर हुई और उग्रसेनका आनन्द बढ़ा ॥८॥

पार्थिवरीक कष्ट = गान्धी-मिशन-कष्ट—महात्मा गांधीका अपना-कष्ट। बन्दिपुर—कारागार। पार मिसी मेन्टि कलसल बले—पार्लियामेण्टकी सहायतासे। उग्र सेनानन्द—प्रथम सेनाकी प्रसन्नता।

बादमें तुम्हारे और हमारे बीचके भेदका कारण मालूम हुआ कि तुम द्वारिकाके ही निवासी हो। बाल्य कालमें हमारी सम्पत्तिसे बढ़नेके लिए आए थे। हे गोपेन्द्र, तुम विश्व विख्यात हुए। इतने दिन तक हमारे साथ चले, आज हमारे साथ चलनेमें लाज लगती है ॥९॥

द्वीपान्तर-निवासी—दूर देश (ब्रिटिश द्वीप) में रहनेवाले।

हम तुमको अपने घर बुलानेके लिए नहीं गई थीं। तुम्हीं अपने स्वार्थके लिए आए थे। तुमको अति सरल हृदयवाला जानकर ही तो स्नेह-आदरसे हमने तुम्हें अपने घरमें रखा था। हे गोपेन्द्र, तुम कहोगे कि तुमने हमारा उपकार किया है। किन्तु तुमने जो भी किया हो अपने स्वार्थके लिए ही हमें उसकी जरूरत नहीं थी ॥१०॥

तुम्हारे पहले तुम्हारे ही समान बलराम आए। वे क्रोधी थे लेकिन उन्होंने हमारा कुछ बिगाड़ा नहीं था। उन्होंने वस्त्र-हरण नहीं किया था। और प्रार्थना करनेवाली द्रौपदीके पास वस्त्र नहीं भेजा था ॥११॥

मुगलमान—मुसलमान। बसन हरण—यहाँ भारतीय कार्पास-शिल्पका नाश। दुरपदसुता विलित कार पाय करि न मिले से प्रेरण—दूर पद = दूर देश अर्थात् इंग्लैंड सुता = सूतकी बिनाकर कार पाय = कारपास = कार्पास नहीं भेजा था।

माम्म कर यदि वाक्ति-वासि कर्मे
तुम्भ पराक्रम बळिला,
तुम्भ बिना आम्भे चळि न पारिबु
कथा बुझिबाकु पड़िला,
जीवन, जीविका तुम्भरि हातरे,
बेद तुम्भ पद आधारे रहिलु
कालि मरुअछू कातरे ।।१२।।

पक्ष मारिबार धरम तुम्भर
बिषकूट कर आहार,
तुम्भ पुतनारो–महिमा करइ
नारी गउरब प्रसार,
तुम्भर, धर्म कळिबार तुम्भर,
बन्धु बोलि याकु सनाळ बेस
प्राण न रहिला तोकर ।।१३।।

कृष्णा कृष्ण पेमि भारत बिप्लव
उपुजिला कपट पाशे,
यहिँ कृष्ण, तहिँ बिजय निश्चय
रहिगला लोक बिश्वासे,
बोइले, दुःशासन मूळ कारण,
बिधाता बिधान लंघनीय नुहेँ
केमन्त दुमन्ता कारण ? ।।१४।।

बिराट बिभव मुद्धे भोगकले
कौशळे पाण्डुर नन्दने,
दोषे अधिकारी निजे अपसरि
रहिले चरम लग्ने,
मत्तर, मिळिला याहा दोषकाळे,
पूब दळ बळ होइला बिदित
पर देबा हेला कपाळे ।।१५।।

हमारे हाथ पकड़ धीरे-धीरे चलनेके ही कारण तुम्हारी शक्ति बढ़ी तुम्हारे बिना हम लोग जी नहीं सकेंगी, अन्तमें यही बात सुननेको मिली। जीवन और जीविका तुम्हारे हाथ दे एवं तुम्हारे चरणोंकी माथा रखकर रो रो कर मर रही हैं ॥१२॥

कर धरि—हस्त धारण कर कर (टैक्स) की सहायतासे।

बैल मारना तुम्हारा धर्म है और विषपान करना तुम्हारा काम है। पूतनाकी महिमा बढ़ाई, जो नारी-गौरवका प्रसार करती है। तुम्हारा अन्त पाना बड़ा दुर्गम है। बन्धु मानकर जिसको सैन्य बल दिया, उसीके प्राण गए ॥१३॥

बध मारिबार धरम तुम्भर —गौ हत्या तुम्हारा धर्म है। विषकूट कर आहार —तुम विस्कुट खाते हो। पूतनारी-महिमा करइ नारी गउरव प्रसार — तुम्हारी पवित्र नारी-महिमा (नारीकी पवित्रता) नारी-गौरवको बढ़ाती है।

कृष्ण और कृष्णाको लेकर कपटी पाशोंसे भारतमें विप्लव पैदा हुआ। जहाँ कृष्ण हैं वहाँ विजय है—यह विश्वास लोगोंमें छा गया। कहते हैं दुःशासनही उसकी जड़ था परन्तु विधिका विधान अलंघनीय है। यह कैसे दूर किया जा सकता है? ॥१४॥

कृष्णा कृष्ण घेनि—भारतीय नर-नारीको लेकर। कपटपाशे—छल करके। यहिं कृष्ण—जहाँ भारतीय होते हैं। दुःशासन—खराब शासन-व्यवस्था।

पाण्डव पुत्रोंने कौशलसे विराट सुख-वैभव भोगा। शेषमें स्वयं हटकर सेवामें नियुक्त रहे। अन्तमें जो उत्तर मिला उससे पूर्ण कौशल मालूम हो गया और केवल सिरपर हाथ धरना ही रह गया ॥१५॥

विराट विभव—विराट देशका विपुल विभव।
पाण्डुर नन्दने—पाण्डु वर्णवाले अंग्रेज। कर देवा हेला कपाळे —कर (टैक्स) देना निश्चित हुआ मस्तकपर हाथ धरकर हाय-हाय करना।

बड़-बड़ बीरे कुरु मन्न बाह
पाण्डवङ्कु जय वाछिले,
तुम्भ अपमाने कुरु यहि मने
दुर्य्योधन दोष काछिले,
तुम्भरे, मकति पाए उमङ्कर,
तुम्भर सदिच्छा अपाण्डव पक्षे
न हेला केबे सुमकर ।।१६।।

न दोषि अक्षरे अर्थर क्षरे
उचित स-कार नरिब,
लघु गुरु ह्रस्व दीर्घ या अबश्य
हेबा योग्य ताहा करिब,
पाठक, सेहि भार तुम्भ हातरे,
हेव विचारक थोकि विरचक
जणाउछि मिति मायरे ।।१७।।

बड़े-बड़े वीर कौरवोंका अन्न खाकर पाण्डवोंकी विजय-कामना करने लगे। दुर्योधनसे तुमको अपमान मिला, इससे दुखी हो कर दुर्योधनको दोषी माना गया। दोनों दल तुम्हारी भक्ति करते थे। तुम्हारी कृपाकी दृष्टि कौरवोंके पक्षमें कभी नहीं हुई ॥१६॥

कुरु अन्न खाइ —भारतीय अन्न खाकर (भारतीय होते हुए भी)। पाण्डवङ्क जय मागिले —पांडवोंकी विजय-कामना की। तुम्भ अपमाने दुःख बहि मने दुर्योधन दोष भाषिले —तुम्हारी पराजयसे दुःखी होकर दुर्योधन –(जिसके साथ युद्ध करना दुस्तर होता है।) अर्थात् भारतीय वीरोंका दोष निकालने लगे। [illegible]—भारतीय।

अक्षरको दोषी न मान ठीक अर्थके लिए जहाँ जिस स-कारकी जरूरत हो व्यवहार करना। लघु, गुरु, ह्रस्व, दीर्घ—जहाँ जिसकी जरूरत हो, वहाँ उसका व्यवहार करना। हे पाठक वर्ग! यह भार तुम पर है। तुम इसके विचारक हो, इसलिए लेखक नत मस्तक हो कहता है ॥१७॥
